श्रीजगन्नाथ रथ-यात्रा

(श्रीमन् महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित गूढ़ रहस्यपूर्ण भाव समन्वित वृत्तान्त)

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्रीजगन्नाथ रथ-यात्रा

(श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा प्रदर्शित गूढ़ रहस्यपूर्ण
भाव समन्वित वृत्तान्त)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय
मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके
द्वारा प्रदत्त वक्तृताओंपर आधारित
एवं तत्कृत सम्पादित

प्रकाशक—

श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज

प्रथम संस्करण— १०,००० प्रतियाँ

श्रीगौरपूर्णिमा

श्रीचैतन्याब्द ५२२

११ मार्च २००९

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰ प्र॰)
०५६५-२५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
०५६५-२४४३२७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकु
गोवर्धन (उ॰ प्र॰)
०५६५-२८१५६६८

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰ बं॰)
०९३३३२२२७७५

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११-२५५३३५६८

खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
०५६५-२४४३१०१

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

समर्पण

ऐकान्तिक रूपानुगत्यको
स्वीकार करनेवाले परम-रसिक-कवि,
श्रीनवद्वीपधाममें श्रीरथ-यात्राका प्रवर्त्तन
करनेवाले तथा श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा
रथ-यात्राके समय आस्वादित व्रज सम्बन्धीय विप्रलम्भ
भावोंका भाव-विभोर होकर गुणगान करनेवाले

अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म
नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी
प्रेरणासे
यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।
श्रीगुरुपादपद्मकी अपनी ही वस्तु उन्हींके
श्रीकरकमलोंमें समर्पित है।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-सेवाभिलाषी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

विषय–सूची

प्रस्तावना

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी अनुकम्पा और प्रेरणासे उन्हींकी प्रीतिके लिए 'श्रीजगन्नाथ रथ-यात्राके श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा प्रदर्शित गूढ़ रहस्यपूर्ण भाव समन्वित वृत्तान्त' को हिन्दी भाषा-भाषी पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ।

श्रीपुरुषोत्तमधाम श्रीजगन्नाथपुरीमें प्रत्येक वर्ष आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीया तिथिसे आरम्भ करके शुक्ला एकादशी तक अर्थात् कु

महोत्सव मनाया जाता है। शुक्ल पक्षकी द्वितीया तिथिके दिन श्रीजगन्नाथ, श्रीबलेदव और श्रीसुभद्राजीके रथ नीलाचल श्रीजगन्नाथ मन्दिरसे सुन्दराचल (वृन्दावन) गुण्डिचा मन्दिरकी ओर जाते हैं तथा श्रीजगन्नाथ, श्रीबलेदव और श्रीसुभद्राजी प्रायः सात दिन तक श्रीगुण्डिचा मन्दिरमें वास करते हैं। नवम दिन अर्थात् शुक्ला एकादशीके दिन रथ पुनः श्रीगुण्डिचा मन्दिरसे श्रीजगन्नाथ मन्दिरकी ओर लाये जाते हैं।

श्रीराधा-भाव-द्युति-सुवलित श्रीचैतन्य महाप्रभुने गुण्डिचा मन्दिर मार्जनकी प्रथाको आरम्भ करके इस उत्सवको दस दिनका बना दिया है। इन दस दिनोंमें गुण्डिचा मन्दिर मार्जन, नेत्रोत्सव अथवा अङ्ग-रागोत्सव, पाण्डुविजय (श्रीविग्रहोंके श्रीमन्दिरसे बाहर आनेकी परिपाटी और रथके ऊपर आरोहण), रथ-गमन, हेरा-पञ्चमी (श्रीलक्ष्मी-विजयोत्सव) आदिके अतिरिक्त अन्यान्य अनेक उत्सव मनाये जाते हैं।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने इस सब उत्सवोंका तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके परिकरोंके द्वारा इन उत्सवोंको पालन करनेकी रीतिका विस्तृत रूपमें वर्णन किया है।

यद्यपि रथ-यात्राका उत्सव प्राचीन कालसे मनाया जाता है और अनेकानेक सम्प्रदाय, यहाँ तक कि मायावादी लोग भी इस उत्सवमें सम्मिलित होते हैं, तथापि जिस रूपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने इस रथ-यात्राके अद्भुत और गूढ़ रहस्योंको प्रकाशित किया है, श्रीगौड़ीय-भक्तोंके अतिरिक्त प्रायः अन्यान्य सभी लोग उन रहस्योंसे अनभिज्ञ हैं।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके नित्य परिकर तथा उनकी लीलाओंके प्रत्यक्षदर्शी श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामीके कड़चे तथा श्रील रघुनाथदास गोस्वामीके मुखकमलसे निःसृत कथाओंके आधारपर स्वरचित श्रीचैतन्य-चरितामृतमें रथ-यात्राके सम्बन्धमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रकाशित सभी भावों और रहस्योंको जगत्-वासियोंके परम कल्याणके लिए अत्यन्त मार्मिक रूपमें लिपिबद्ध किया है।

अपने पारमार्थिक जीवनके प्रारम्भिक अनेकानेक वर्षोंमें मुझे अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज तथा श्रीश्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकु
आश्रितजनोंके मुखसे श्रीरथ-यात्राके गूढ़ रहस्योंके विषयमें श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

रथ-यात्राके समक्ष श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा उच्चारित कु
ई॰ में इग्लैंड, १९९९ ई॰ में फ्राँस, इग्लैंड तथा होलैण्ड, २००० ई॰ में वेल्स तथा २००१ ई॰ और २००२ ई॰ में इग्लैंडमें मैंने श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा वर्णित तथा गुरुवर्गोंके मुखसे निःसृत हरिकथाके आधारपर श्रीमन्

महाप्रभुके द्वारा आस्वादन किये गये जिन दिव्य गूढ़ भावोंके एक कणका स्पर्शमात्र किया था, उसीको ही श्रीमती श्यामरानी दासीने संग्रह करके भक्तोंकी सहायतासे एक पुस्तिकाके रूपमें अँग्रेजी भाषामें छपवाया था। उस पुस्तिकाकी लोकप्रियताको देखकर बेटी वृन्दा (वन्दना), बेटी डॉ. प्रेममयी तथा उसकी माता ब्रजबालादेवीने इसके प्रयोजनीय अंशको हिन्दी भाषामें अनुवाद किया था। मैंने उस पाण्डुलिपिको श्रीमान् गोकु
और सम्वर्द्धन करनेके लिए दिया। उन्होंने इस कार्यको बड़े परिश्रम और लगनसे सम्पन्न किया। तत्पश्चात् मैंने उसमें कु
किया है। जो पाठकोंके समक्ष है।

इस ग्रन्थमें प्रूफ-संशोधन तथा ले-आउट आदिका कार्य श्रीमान् भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीमान् विजयकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमान् अच्युतानन्द ब्रह्मचारी तथा बेटी शान्ति दासीने किया है। मुख पृष्ठका डिजाइन श्रीमान् विकास ठाकु दासाधिकारी द्वारा किया गया है। श्रीमान् जयगोपालदास ब्रह्मचारीने प्रकाशनसम्बन्धी सेवाओंमें योगदान किया है। जिन-जिन भक्तोंने इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेमें मेरी सहायता की है, मैं श्रीमन् महाप्रभु शचीनन्दन गौरहरि और श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव तथा श्रीसुभद्रादेवीके श्रीचरणकमलोंमें प्रार्थना करता हूँ कि वे उनपर प्रचुर कृपाकी वर्षा करें।

श्रीजगन्नाथ रथ-यात्राके गूढ़ भावोंको जाननेसे ही यह भलीभाँति जाना जा सकता है कि राधा-भाव-द्युति-सुवलित श्रीचैतन्य महाप्रभुके अवतरित होनेके क्या कारण है तथा वे जगत्-वासियोंको किस वस्तुका दान करना चाहते थे।

इस ग्रन्थमें भगवान् श्रीजगन्नाथके प्राकट्यके सम्बन्धमें तीन इतिहास, भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके भक्त-वात्सल्यको प्रदर्शित करनेवाला उपाख्यान, गुण्डिचा मन्दिर मार्जन, रथ-यात्रा,

रथ–यात्रामें श्रीमन् महाप्रभुके भाव, हेरा–पञ्चमी, श्रीमन् महाप्रभुकी शिक्षाएँ तथा उपसंहार नामक प्रसङ्गोंके माध्यमसे भजन–साधनके उपयोगी अनेकानेक विचार प्रस्तुत किये गये हैं।
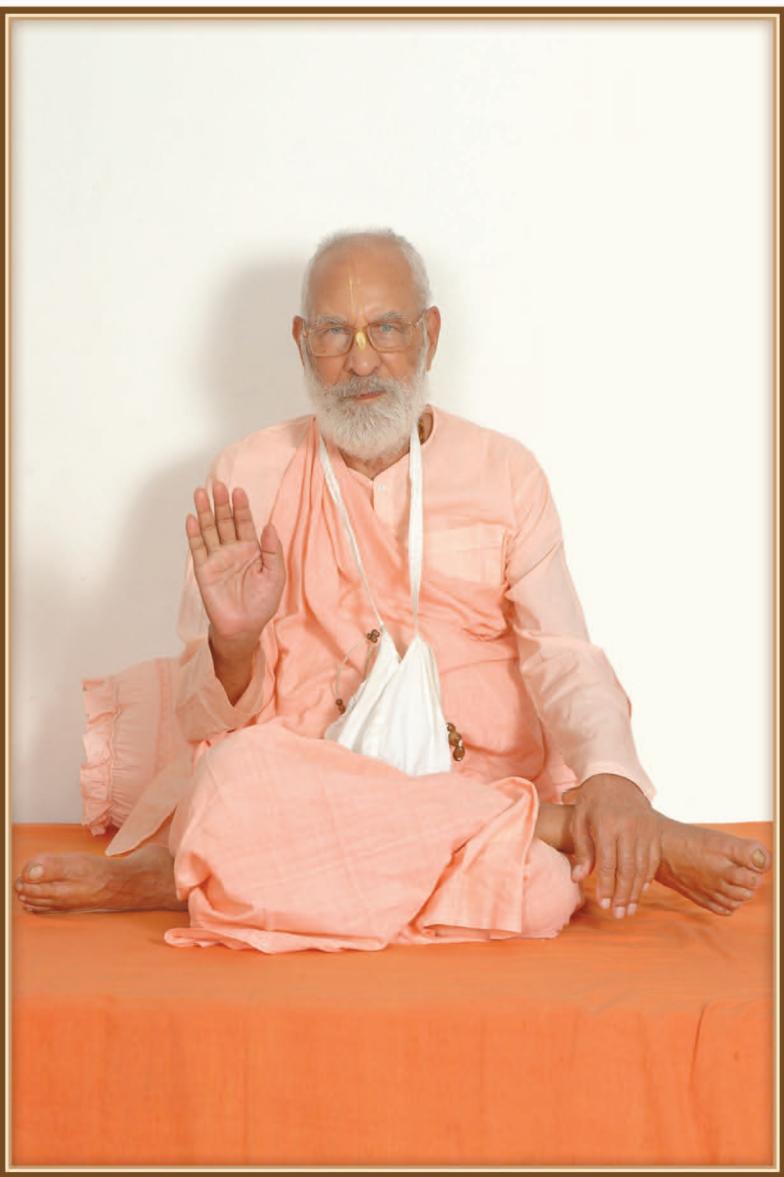
मुझे दृढ़ विश्वास है कि इस ग्रन्थमें आलोचित विषय–वस्तुका शुद्ध भगवद्भक्तोंके आनुगत्यमें अनुशीलन करनेसे पाठकोंके हृदयमें अवश्य ही व्रजभक्तिका सञ्चार होगा तथा पाठक भगवान् श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव तथा श्रीसुभद्राजीके प्रेममय कलेवरकी महिमासे अवगत होकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेमधर्ममें प्रवेशाधिकार प्राप्त कर पायेंगे।

इस ग्रन्थमें यदि कोई भूल–त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो पारमार्थिक पाठकगण निजगुणोंसे क्षमा करेंगे तथा संशोधनपूर्वक ग्रन्थका सार ग्रहणकर बाधित करेंगे।

परमार्थ प्राप्तिके इच्छुक श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पाठ और कीर्त्तनकर परमार्थके पथपर अग्रसर हों—यही प्रार्थना है। अलमतिविस्तरेण।

श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी
५२२ श्रीचैतन्याब्द
७ फरवरी, २००९
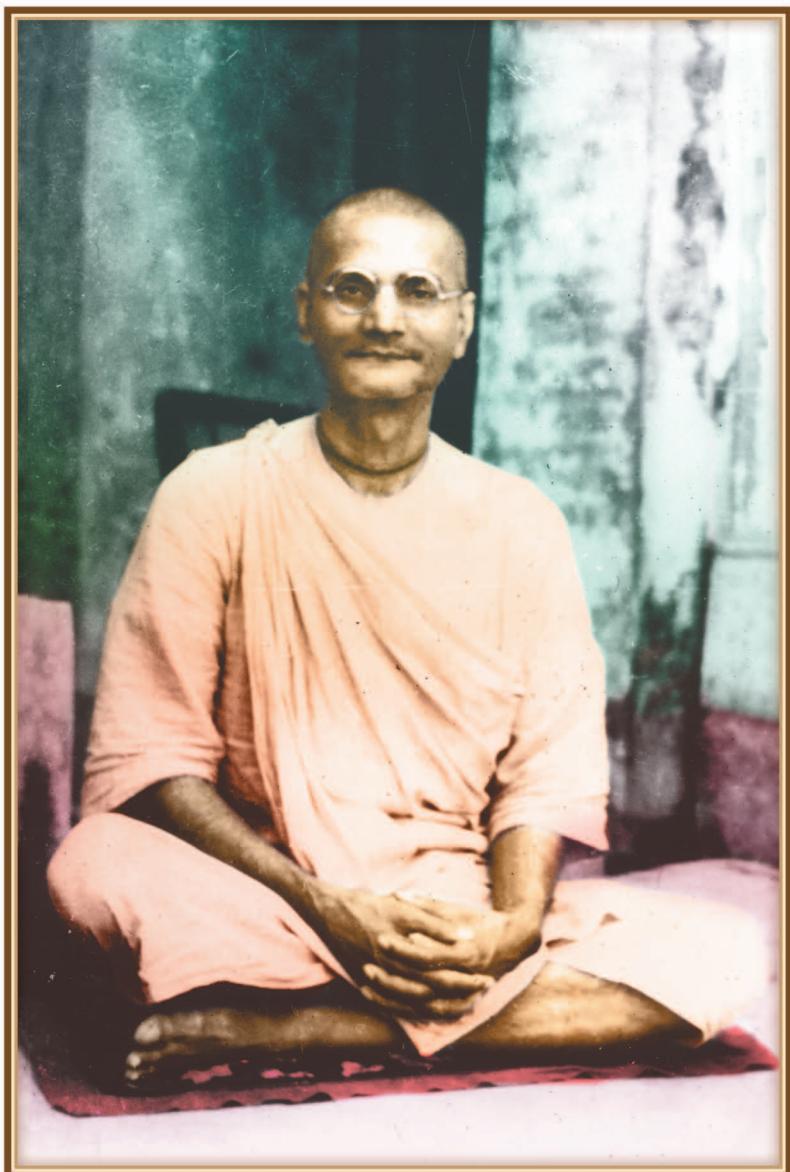
श्रीगुरुवैष्णव–कृपालेश–प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण
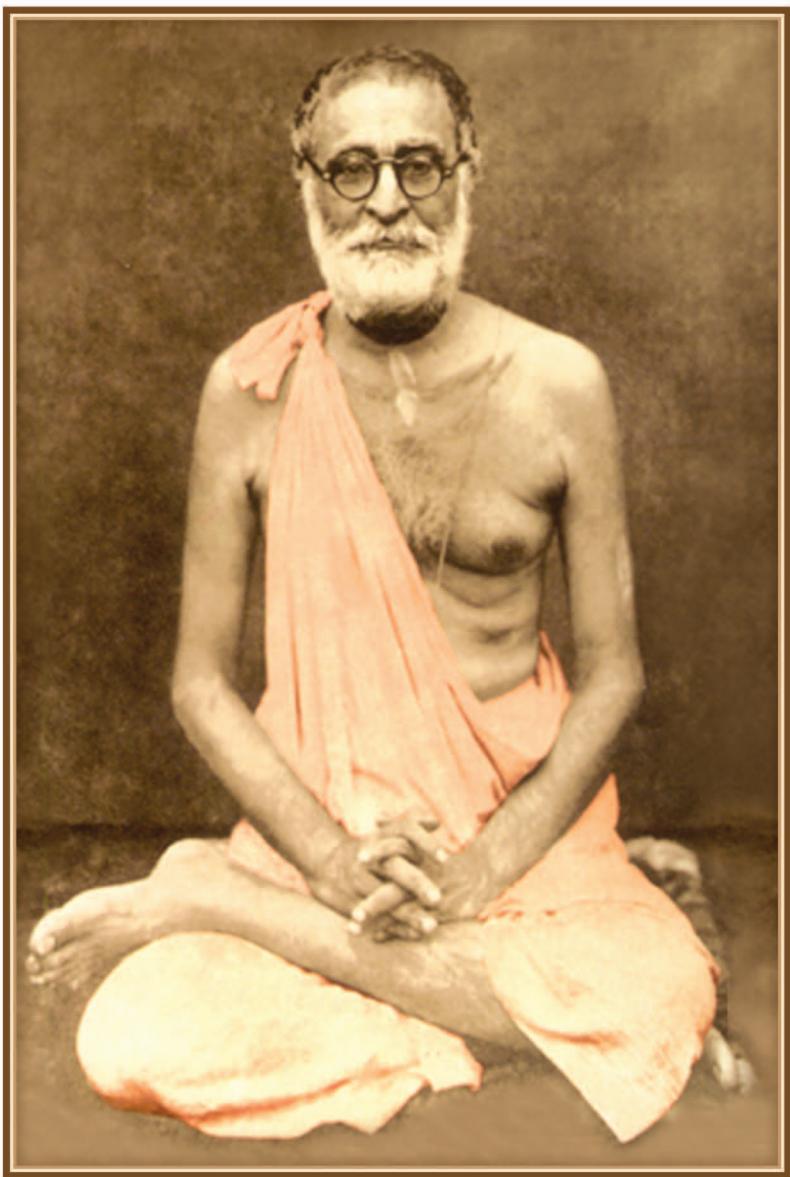
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर
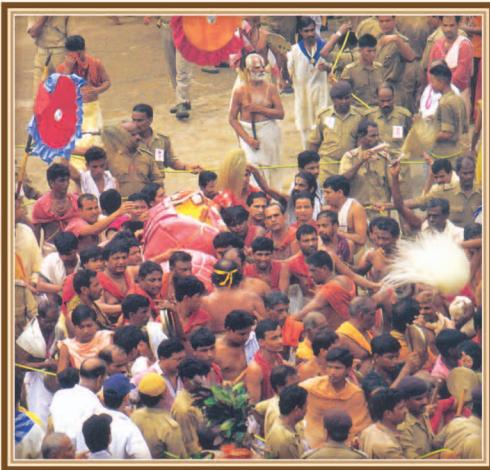
श्रीबलदेव, श्रीसुभद्राजी

और श्रीजगन्नाथजीके रथ

श्रीबलदेव

श्रीसुभद्रा

श्रीजगन्नाथदेव

प्रथम अध्याय

(मङ्गलाचरण तथा रथ-यात्राका संक्षिप्त परिचय)

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अज्ञानरूपी अन्धकारको ज्ञानाञ्जनरूपी शलाकासे आँखोंको खोलनेवाले श्रीगुरुके चरणकमलोंमें प्रणाम है।

वाञ्छा-कल्पतरुभ्यश्च कृपा-सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

जो वाञ्छा-कल्पतरु, कृपाके समुद्र तुल्य और पतितपावन हैं, उन वैष्णवोंको पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ।

नमो महावदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने गौरत्विषे नमः॥

जो देव-दुर्लभ, कृष्ण-प्रेम प्रदाता, परम करुणामय, श्रीकृष्णचैतन्य नामधारी और गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण ही हैं; उन्हीं (श्रीराधा-द्युति-सुवलित) गौर-कान्तिमय गौराङ्गमहाप्रभुको नमस्कार है।

गुरुवे गौरचन्द्राय राधिकायै तदालये।
कृष्णाय कृष्णभक्ताय तद्भक्ताय नमो नमः॥

मैं श्रीगुरुदेव, श्रीगौरचन्द्र, सगण श्रीमती राधिका, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण-भक्तों तथा उन भक्तोंके भी भक्तों अर्थात् सभी वैष्णवोंके श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम करता हूँ।

भक्त्या विहीना अपराध-लक्षैः, क्षिप्ताश्च कामादि-तरङ्ग-मध्ये।
कृपामयि! त्वां शरणं प्रपन्ना, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥

हे कृपामयी देवि! वृन्दे! हम तुम्हारे चरणारविन्दोंको भावपूर्वक प्रणाम करते हैं; क्योंकि हम सब श्रीहरिभक्तिसे विहीन हैं, अतएव लाखों प्रकारके अपराधोंसे काम आदि दुस्तर समुद्रोंकी तरङ्गोंमें फेंके जा रहे हैं, अतएव आपकी शरणमें आ रहे हैं।

तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया बिना।
इति विज्ञाय देवि त्वं नय मां चरणान्तिकम्॥

हे स्वामिनि श्रीराधे! मैं आपकी ही हूँ, मैं आपकी ही हूँ, मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकती—यह जानकर आप मुझे अपने श्रीचरणोंकी शरण प्रदान कीजिये।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुनित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि-गौरभक्तवृन्द॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

प्रति वर्ष उड़ीसाके पूर्वी तटपर स्थित अति पावन नगरी श्रीजगन्नाथपुरीमें भगवान् श्रीजगन्नाथदेवजीकी रथ-यात्राका उत्सव पारम्पारिक रीतिके अनुसार बड़े धूमधामसे आयोजित किया जाता है। इस अवसरपर मन्दिरके सेवक श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और उनकी बहन श्रीसुभद्राजीको मन्दिरसे बाहर लाकर उन्हें एक-एक विशाल रथपर बैठाते हैं। भक्तलोग इन रथोंको खींचकर गुण्डिचा मन्दिर तक ले जाते हैं, जहाँ श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्राजी एक सप्ताह तक विश्रामकर पुनः श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें लौट आते हैं।

श्रीजगन्नाथ रथ-यात्राका बाह्य एवं गूढ़ कारण

रथ-यात्राकी यह प्रथा सत्ययुगसे चली आ रही है। रथ-यात्राका प्रसङ्ग स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, पुरुषोत्तम-माहात्म्य, जगन्नाथजीकी डायरी और श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा रचित श्रीबृहद्भागवतामृत तथा हमारे अन्य गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें वर्णित हुआ है। इस रथ-यात्राका उद्देश्य यह है कि वे लोग जो सम्पूर्ण वर्ष भरमें मन्दिरमें प्रवेश नहीं पा सकते हैं उन्हें भगवान्के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो। यह तो रथ-यात्राका बाह्य कारण है किन्तु इसके गूढ़ रहस्यको श्रीचैतन्य महाप्रभुने प्रकटित किया है। श्रीजगन्नाथ मन्दिर द्वारका अथवा कु
सदृश है और गुण्डिचा मन्दिर वृन्दावनका प्रतीक है।

श्रीकृष्ण जन्मसे लेकर ग्यारह वर्ष तक व्रजमें रहे और वहाँ उन्होंने अपनी मधुरातिमधुर लीलाओंके द्वारा व्रजवासियोंको आनन्द प्रदान किया। इसके पश्चात् वे अक्रूरजीके साथ मथुरा चले गये और वहाँ उन्होंने कंसका वध करके श्रीवसुदेव और देवकीजीको कंसके अत्याचारोंसे मुक्ति दिलायी। जरासन्धके बार-बार मथुरापर आक्रमण करनेपर मथुरावासियोंकी रक्षाके लिए वे उन सबको रात-ही-रातमें द्वारका ले गये।

श्रीकृष्णके व्रजसे चले जानेपर समस्त व्रजवासी उनके वियोगमें अत्यन्त दुःखी हो गये। अनेक वर्षोंके पश्चात् सूर्य-ग्रहणके अवसरपर कु
पुनर्मिलन हुआ। श्रीकृष्णसे मिलकर गोपियोंका विरह ताप कु
परिवेशमें देखकर गोपियोंके हृदयमें मिलनका वैसा अद्भुत आनन्द नहीं हुआ, जैसा उन्हें वृन्दावनमें गोपवेशमें श्रीकृष्णके साथ मिलनेपर होता था। तब गोपियोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीराधाजीने कहा—"हे कृष्ण! हमारा मन वृन्दावन है और आप हमारे

हृदयरूपी रथपर विराजमान होकर हमारे साथ उस वृन्दावनमें चलें, जहाँ हमारे साथ आपकी मधुरातिमधुर प्रेममयी लीलाएँ हुई थीं।" श्रीराधाजीके भावोंमें विभावित श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने इन्हीं भावोंको श्रीजगन्नाथजीकी रथ-यात्राके समय प्रकाशित किया था।

द्वितीय अध्याय

भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके प्राकट्य और रथ-यात्रासे सम्बन्धित प्रथम इतिहास

श्रीजगन्नाथदेवके प्राकट्य और रथ-यात्राका प्रथम इतिहास सत्ययुगके समयका है। इसका विवरण स्कन्दपुराण और पुरुषोत्तम-माहात्म्यसे लिया गया है। इन विवरणोंमें थोड़ी-बहुत भिन्नता होनेपर भी मूल इतिहास एक ही है।

सत्ययुगमें मध्य भारत स्थित उज्जैनकी प्राचीन अवन्ती नगरीमें इन्द्रद्युम्न नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम गुण्डिचा था। राजा और रानी दोनों ही बड़े उत्तमभक्त और धार्मिक थे। निःसन्तान होनेपर भी वे इस विषयमें शोक न कर इसे भगवत्-कृपा ही मानते थे। प्रचुर धन-सम्पत्ति होनेपर भी वे दोनों विषयोंसे सम्पूर्ण रूपमें उदासीन रहकर सदा-सर्वदा भगवान्की सेवामें ही रत रहते थे। उनके हृदयमें भगवान्के साक्षात् दर्शन प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा थी और वे भगवान्की कृपा प्राप्तिकी अभिलाषासे ही जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे सदा मन-ही-मन इस प्रकार प्रार्थना करते—"वह दिन कब आयेगा जब हमें साक्षात् अपने प्रभुके दर्शन प्राप्त होंगे?"

राजा इन्द्रद्युम्न स्वयं ही देश-विदेशसे आनेवाले सभी तीर्थ यात्रियोंका आदर-सत्कार अपने महलके अतिथिगृहमें करते थे। एक रात कु

अतिथि गृहमें रुके। वे एक परमश्रेष्ठ तीर्थस्थानसे भगवान्के अत्यन्त सुन्दर चतुर्भुज श्रीविग्रह नीलमाधवके दर्शन करके ही लौटे थे और परस्पर उनकी महिमाका गुणगान कर रहे थे।

उन तीर्थयात्रियोंका वार्त्तालाप एक ब्राह्मणने सुना और उसने राजाके मन्त्रीको बतलाया और पुनः उस मन्त्रीने अपने राजा इन्द्रद्युम्नको बतलाया—"महाराज! कल रातको कु
भगवान्के एक ऐसे श्रीविग्रहका गुणगान कर रहे थे, जिनका जो कोई भी दर्शन करता है, उनकी इस दुःखमय संसारसे मुक्ति हो जाती है और वह पुनः कभी इस प्राकृत जगत्में नहीं लौटते। वह वैकु
परिकर बन जाते है। दर्शन करनेकी तो बात ही क्या, यदि कोई व्यक्ति साधारण रूपमें भी यह सङ्कल्प करता है कि 'मैं कल उनके दर्शन करने जाऊँगा' परन्तु वहाँके लिए यात्रा करनेसे पहले रातमें ही उसके प्राण छूट जायें तो भी वह व्यक्ति चतुर्भुज रूप धारणकर वैकु

मन्त्रीके मुखसे ऐसा सुनकर महाराज इन्द्रद्युम्न बहुत आनन्दित होकर उससे पूछने लगे—"उन श्रीविग्रहका नाम क्या है तथा वे किस स्थानपर विराजमान है? मैं भी अपनी पत्नी तथा सम्पूर्ण प्रजाके साथ उनके दर्शन करने जाऊँगा।" मन्त्रीने कहा—"महाराज! भगवान्के उस श्रीविग्रहका नाम श्रीनीलमाधव है। किन्तु मुझे यह नहीं पता कि वे कहाँपर विराजमान हैं।" राजा इन्द्रद्युम्नने कहा—"तुम शीघ्रतापूर्वक जाकर उन तीर्थयात्रियोंसे पता लगाओ कि भगवान्के वे श्रीविग्रह कहाँपर विराजित हैं।" मन्त्रीके मुखसे भगवान् श्रीनीलमाधवकी ऐसी अद्भुत महिमा सुनकर राजाके हृदयमें नीलमाधवके श्रीविग्रहके दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा जाग उठी और वे मन-ही-मन सोचने लगे—"किस प्रकार मैं नीलमाधवके दर्शन प्राप्त कर सकूँगा? वे कहाँ विराजमान हैं? क्या वे तीर्थयात्री हमें भगवान् श्रीनीलमाधवके विषयमें बतायेंगे।" महाराज इन्द्रद्युम्न इस प्रकारकी अनेकानेक चिन्ताएँ करते हुए अधीर हो गये। जब मन्त्री उन तीर्थयात्रियोंके वास-स्थानपर पहुँचा, तो उसने आस-पासके अन्य तीर्थयात्रियोंसे सुना कि

वे तीर्थयात्री तो रात्रिमें ही वहाँसे चले गये। उसने आकर सारा संवाद महाराज इन्द्रद्युम्नको सुनाया। मन्त्रीके मुखसे संवाद सुनकर राजा बहुत दुःखी हुए और उन्होंने स्वयं ही भगवान् श्रीनीलमाधवके श्रीविग्रहको ढूँढ़नेका निश्चय किया।

भगवान् श्रीनीलमाधवको ढूँढ़नेका प्रयास

राजा इन्द्रद्युम्नने अपने पुरोहितके विद्वान पुत्र विद्यापतिको तथा अपने अन्य कर्मचारियों और सेनापतियोंको बुलाकर उन्हें विभिन्न दिशाओंमें जाकर श्रीविग्रहको ढूँढ़नेका आदेश देते हुए कहा—"तुममेंसे कु
पश्चिममें और कु
श्रीनीलमाधवको ढूँढ़नेका प्रयास करें। तुमलोगोंको यदि श्रीविग्रहके विषयमें पता चला जाये, तो बहुत ही अच्छा है। अन्यथा जैसा भी क्यों न हो? तीन मास तक सभी लौट आना। जो भी व्यक्ति नीलमाधवके विग्रहके विषयमें मुझे सूचित करेगा, वह अपार धन-सम्पत्ति और उच्च-पदका अधिकारी होगा।" राजा इन्द्रद्युम्नके इस प्रकारके वचन सुननेके उपरान्त सभी कर्मचारियोंने उत्साहित होकर विभिन्न दिशाओंमें प्रस्थान किया। सुकु
पूर्व दिशाकी ओर प्रस्थान किया।

इधर तीन महीनेके बाद विद्यापतिके अतिरिक्त सभी राज-कर्मचारी और सेनापति असफल होकर लौट आये। राजाको बहुत चिन्ता सताने लगी। एक तो भगवान् श्रीनीलमाधवका कु
कोई संवाद नहीं था कि वे कहाँ हैं? इस विषयमें बतानेवाला भी कोई नहीं था।

उधर विद्यापति हिन्द महासागरके समीप भारतवर्षके पूर्वी तटपर नीलमाधवके श्रीविग्रहको ढूँढ़नेका भरसक प्रयास करते हुए निरन्तर भ्रमणकर रहे थे। एक दिन, महासागरके तटपर

उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर गाँव देखा। वहाँ एक हरा-भरा पर्वत था। वृक्ष पुष्पों और फलोंसे लदे हुए थे तथा उस गाँवके सभी निवासी अत्यन्त सभ्य थे। क्योंकि सन्ध्या हो चली थी इसलिए विद्यापतिने उसी गाँवमें विश्राम करनेका निश्चयकर वहाँके निवासियोंसे पूछा—“मैं आज रात यहाँ विश्राम करना चाहता हूँ क्या मुझे यहाँ रहनेके लिए कोई उपयुक्त स्थान मिल सकता है?” ग्रामवासियोंने उत्तर दिया—“इस गाँवके प्रधान विश्वावसु हैं। वे शबरजातिके होनेपर भी बड़े धार्मिक प्रवृतिके, विद्वान, विनम्र और उदार चरित्रके व्यक्ति हैं। इस गाँवमें जब भी कोई यात्री या अतिथि आते हैं, वे सब उनके घरपर ही ठहरते हैं, अतः आप निःसंकोच वहीं चले जाइये।”

जब विद्यापतिने विश्ववासुके घर पहुँचकर दरवाजा खटखटाया, तब विश्वावसुकी सोलह वर्षीय सुन्दर पुत्री ललिताने दरवाजा खोलकर कहा—“इस समय मेरे पिताजी बाहर गये हैं, परन्तु लौटते ही वे आपके ठहरनेकी सारी व्यवस्था कर देंगे। कृपया आप घरके बाहर प्रतीक्षा करें।”

कु

मधुर सुगन्ध आ रही थी और उनके ललाटपर सुगन्धित सुन्दर तिलक था। अतिथिको घरके बाहर प्रतीक्षा करते देखकर वे लज्जित होकर बोले—“ओह! देरसे आनेके लिए मुझे क्षमा करें। कृपया आप भीतर आइये।” विश्वावसु और उनकी पुत्री अतिथिको घरके भीतर ले आये। विद्यापतिका मनोहर रूप और सौम्य स्वभाव देखकर विश्वावसु बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने विद्यापतिको कहा—“यदि आप चाहें, तो यहाँ कु

ललितासे कहा—“इस ब्राह्मणका आदर-सत्कार करो तथा इनकी खाने-पीने और अन्य आवश्यकताओंका ध्यान रखो। इन्हें यहाँ किसी वस्तुका अभाव नहीं होना चाहिये।”

विद्यापतिने वहाँ भोजनके उपरान्त विश्राम किया। विद्यापति जब विश्वावसुकी प्रतीक्षा करते हुए उनके घरके बाहर बैठे थे, तभी उन्हें उस घरमेंसे एक मनमोहक सुगन्ध आ रही थी और विशेषतः विश्वावसुके घर लौटनेपर वह सुगन्ध और भी अधिक बढ़ गयी थी। इसपर विद्यापति मन-ही-मन विचार करने लगे—“यह मनमोहक सुगन्ध कहाँसे आ रही है? मैंने अपने सम्पूर्ण जीवनमें ऐसी मधुर गन्धका कभी भी अनुभव नहीं किया। मुझे यहाँ कु
चाहिये। सम्भवतः मुझे नीलमाधवके विषयमें कु
ही जाये।” यह सोचकर वह कु
आस-पासके विभिन्न स्थानोंपर नीलमाधवको ढूँढ़ने लगे।

कु
ललिताकी उनके प्रति प्रीति हो गयी। विद्यापतिकी भी उससे घनिष्ठता बढ़ने लगी और धीरे-धीरे उन दोनोंकी घनिष्ठता प्रेममें परिणत हो गयी। ललिताके प्रति अत्यन्त प्रेम होनेके कारण विवाहित होनेपर भी विद्यापतिने विश्वावसुसे ललिताके साथ विवाहकी अनुमति माँगी। विश्वावसु इस विवाहके लिए सहमत हो गये और उन्होंने उसी गाँवमें उन दोनोंका विवाह करा दिया।

विश्वावसु प्रतिदिन बाहर जाते थे। सन्ध्याकालमें लौटनेपर भी वे प्रसन्नचित्त होते थे और उनकी देहसे एक अद्भुत सुगन्ध आती थी। एक दिन विद्यापतिने एकान्तमें ललितासे कहा—“हे प्रिये, अब तुम मेरी पत्नी हो और मुझे तुमपर पूर्ण विश्वास है। क्या तुम मुझे बता सकती हो कि तुम्हारे पिताजी प्रतिदिन पूजा करने कहाँ जाते हैं और यह विचित्र सुगन्ध कहाँसे आती है?”

ललिताने उत्तर दिया—“मैं नहीं बता सकती। मेरे पिताजीकी आज्ञा है कि यह रहस्य किसीको भी नहीं बताऊँ? यह अत्यन्त गोपनीय है।”

विद्यापतिने कहा—“क्या तुम मुझे भी नहीं बता सकती? तुम मेरी अर्धाङ्गिनी हो, मुझसे अभिन्न हो। मैं तुम्हारा पति हूँ, इस कारण हमारे बीच कोई गोपनीय रहस्य नहीं होना चाहिये।”

ललिताने कहा—“आप मुझे वचन दीजिये कि इस रहस्यको किसीके सामने प्रकट नहीं करेंगे।”

विद्यापतिने उत्तर दिया—“पत्नीको इस प्रकार पतिपर सन्देह नहीं करना चाहिये। मैं जानता हूँ कि तुम एक पतिव्रता स्त्री हो, अतएव यह बात तुम्हें मुझे अवश्य बतलानी चाहिये।” यह कहकर विद्यापति मौन हो गये।

तब ललिता बोली—“अच्छा मैं आपको बतला रही हूँ। मेरे पिताजी भगवान्‌की एक श्रीमूर्त्तिका अर्चन-पूजन करने जाते हैं।”

विद्यापतिने पूछा—“कौन-सी श्रीमूर्त्ति?”

ललिताने कहा—“मैंने अपने पिताजीको इस रहस्यको प्रकट न करनेका वचन दिया था, परन्तु आप मेरे पति हैं, इसलिए मैं आपको बतला रही हूँ। वे नीलमाधवकी पूजा करने जाते हैं।”

यह सुनकर विद्यापति अत्यन्त प्रसन्न हो गये और सोचने लगे—“अन्ततः इतने समयके बाद मुझे नीलमाधवका मधुरातिमधुर नाम तो सुननेको मिला। नीलमाधव अवश्य ही कहीं आस-पास ही होंगे।”

विद्यापति अब ललिताके प्रति अत्यधिक प्रेम प्रदर्शन करने लगे और उनके अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहारको देख ललिताने अन्तमें उन्हें नीलमाधवके विषयमें अनेक बातें बतलायी। विद्यापतिने उससे नम्रतापूर्वक कहा—“प्रियतमे! तुम अपने पिताजीसे निवेदन करो कि एक दिन वे मुझे अपने साथ ले जायें।”

ललिता बोली—"मैं अवश्य ही आपकी सहायता करूँगी।"

सन्ध्याके समय पूजा करके घर लौटे विश्वावसुके द्वारा प्रसाद ग्रहण करनेके उपरान्त ललिता उनके समीप गयी और वह अत्यन्त स्नेह और प्रीतिके साथ बोली—"पूज्य पिताजी! मैं आपसे कु

विश्वावसुने पूछा—"पुत्री! तुम्हें क्या चाहिये?"

ललिताने कहा—"मैं आपसे कु
चाहती हूँ। मैं जानती हूँ कि उसे देनेमें आपको कु
होगा, परन्तु आपको वह वस्तु मुझे देनी ही होगी।"

विश्वावसुने कहा—"कहो पुत्री! क्या चाहती हो?"

ललिताने कहा—"हे पिताजी! मेरे पतिमें नीलमाधवके दर्शनोंकी बड़ी उत्कण्ठा है। मैं चाहती हूँ कि आप उन्हें अपने साथ ले जायें।"

यह सुनकर विश्वावसु बड़े गम्भीर हो गये। वे विचार करने लगे कि विद्यापतिको साथ ले जाना उचित होगा अथवा नहीं। वे जानते थे कि यदि कोई अनाधिकारी व्यक्ति नीलमाधवके दर्शनके लिए पहुँच जायेगा, तो प्रभु अप्रकट हो जायेंगे। अतः किसी अन्य व्यक्तिको साथ ले जानेपर नीलमाधवके अप्रकट होनेका भय विश्वावसुको सताने लगा। जब ललिताने देखा कि पिताजी इस बातके लिए सहमत नहीं दिखायी दे रहे हैं, तो उसने कहा—"यदि आप मेरे पतिको नीलमाधवके दर्शनोंके लिए अपने साथ नहीं ले जायेंगे, तो मैं अभी विष खाकर प्राण त्याग दूँगी। इस बातके लिए आपकी असहमतिका अर्थ यही है कि आप मुझे प्यार नहीं करते।" यह कहकर वह विषपान करनेको उद्यत हो गयी।

यही स्त्रियोंका सबसे शक्तिशाली अस्त्र होता है कि—"मैं प्राण त्याग दूँगी", "मैं विष खा लूँगी", "मैं आत्महत्या कर लूँगी"। उनके ऐसा कहनेपर पिता या पति क्या उत्तर दे

सकते हैं? अन्ततः वे यह कहनेके लिए बाध्य होते हैं कि—"तुम जैसा चाहती हो वैसा ही होगा।"

विश्वावसु इस गहन चिन्तामें डूब गये कि अनाधिकारी व्यक्तिको वहाँ ले जानेसे कही नीलमाधव अप्रकट हो गये तो मैं अपने आपको कैसे क्षमा कर पाऊँगा। वे द्वन्दमें पड़ गये—एक ओर पुत्रीका स्नेह था, तो दूसरी ओर नीलमाधवके भावी विरहकी आशङ्का। बहुत विचारकर उन्होंने ललितासे कहा—"पुत्री! मैं नहीं चाहता कि तुम प्राण त्याग करो। मैं तुम्हारे पतिको नीलमाधवके दर्शनके लिए अवश्य ले जाऊँगा, परन्तु मेरी एक शर्त है। मैं चलते समय उसकी आँखोंपर काली पट्टी बाँध दूँगा और वहाँ पहुँचनेपर ही उसे हटाऊँगा, जिससे वह नीलमाधवके दर्शन कर सके। दर्शनके उपरान्त यहाँ लाते समय मैं पुनः उसकी आँखोंको ढक दूँगा। इससे वह नीलमाधवके दर्शन तो कर सकेगा, परन्तु यह नहीं जान पायेगा कि उनका वास-स्थान कहाँ हैं?"

ललिताने विद्यापतिके पास जाकर कहा—"पिताजी आपको अपने साथ ले जानेके लिए सहमत हो गये हैं। किन्तु उन्होंने एक शर्त रखी है कि वे आपको नीलमाधवके दर्शनके लिए लाते-ले जाते समय आपकी आँखोंपर काली पट्टी बाँध देंगे, ताकि आपको नीलमाधवके वास-स्थानका पता न चल सके। परन्तु मुझे लगता है कि इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है क्योंकि आपको तो भगवान् नीलमाधवके दर्शनसे मतलब है, मार्गसे नहीं।" ललिताकी बात सुनकर विद्यापतिकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा और वह अपनी आँखोंपर पट्टी बँधवानेके लिए तैयार हो गये। किन्तु रात्रिमें उन्होंने ललितासे कहा—"प्रिये! क्या कोई ऐसी योजना बनायी जा सकती है, जिससे मैं पुनः कभी अपने आपसे भी जाकर नीलमाधवके दर्शन कर पाऊँ?" ललिताने कहा—"मैं सोचती हूँ, यदि कोई बात समझ आयेगी तो अवश्य ही बतलाऊँगी।"

विद्यापतिको नीलमाधवके दर्शन

अगले दिन प्रातःकाल ललिताने एकान्तमें विद्यापतिको सरसोंके बीजकी एक पोटली देते हुए धीरेसे कहा—"इसे अपने पास छिपाकर गुप्त रूपमें रख लो। एक-एक कर इन बीजोंको मार्गमें गिराते रहना। वर्षा ऋतु होनेके कारण शीघ्र ही इनसे सुन्दर-सुन्दर पीले पुष्पोंवाले पौधे उग आयेंगे और तब तुम स्वयं ही उन पौधोंके मार्गका अनुसरण करते-करते नीलमाधव तक पहुँच जाओगे। तब तुम्हें मेरे पिताजीसे मार्ग पूछनेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी।" ललिताकी बुद्धिकी प्रसन्नता करते हुए विद्यापति उससे बहुत प्रीतिपूर्वक व्यवहार करने लगे।

जब विश्वावसु नीलमाधवकी पूजा करनेके लिए जाने लगे, तब ललिता उनसे बोली—"पिताजी! आप इनकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर आज ही इन्हें अपने साथ ले जाइये।" तब विश्वावसुने विद्यापतिको बैलगाड़ीमें बैठाकर उनकी आँखोंपर काली पट्टी बाँध दी।

विश्वावसु विद्यापतिको टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे बैलगाड़ीमें ले गये। विद्यापतिने एक-एक करके सरसोंके सभी बीज मार्गमें गिरा दिये और विश्वावसुको इसका कु
चला। पर्वतकी तलहटीपर पहुँचते ही विश्वावसुने बैलगाड़ी वहीं छोड़ दी और विद्यापतिका हाथ पकड़कर पर्वतकी चोटीपर स्थित श्रीनीलमाधवके मन्दिरकी ओर चल दिये। मन्दिरमें प्रवेश करते ही विश्वावसुने विद्यापतिकी आँखोंकी पट्टी हटा दी, जिससे कि वह भगवान् श्रीनीलमाधवके दर्शन कर सके।

भगवान् श्रीनीलमाधवका चतुर्भुज विग्रह था। उन्होंने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारणकर रखे थे। भगवान् श्रीनीलमाधवका रूप अत्यन्त मनोहर था, उनके श्रीविग्रहकी श्रीनारायणके साथ बहुत अधिक समानता थी।

विद्यापति अत्यधिक आनन्दित होकर रोने लगे और सोचने लगे—"मैं इतने लम्बे समयसे—इतने महीनोंसे इन्हींको ढूँढ़ रहा था, और आज इनके दर्शन प्राप्तकर मैं पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट हो गया हूँ। मेरा जीवन सार्थक हो गया है।" तब विश्वावसुने विद्यापतिसे कहा—"तुम कु
ठहरो। मैं वनसे पुष्प और पूजाकी सामग्री एकत्रित करके लाता हूँ। फिर मैं श्रीविग्रहको चन्दन और अन्य द्रव्य अर्पण करके उनका अर्चन करूँगा तत्पश्चात् हम लोग घरकी ओर प्रस्थान करेंगे।" यह कहकर विश्वावसु वनमें चले गये।

विश्वावसुकी प्रतीक्षा कर रहे विद्यापतिने मन्दिरके समीप ही एक सुन्दर सरोवर देखा। वह सरोवर कमलके पुष्पोंसे सुशोभित था। पुष्पोंपर भौंरे गुँजार कर रहे थे और वृक्षोंपर पक्षी मधुर स्वरमें चहचहा रहे थे। सरोवरके तटपर स्थित आम्रवृक्षकी डालियाँ सरोवरके जलपर झुक रही थी तथा उनमेंसे एक डालपर एक काला कौआ बैठा झपकी ले रहा था। विद्यापतिके देखते-ही-देखते वह कौआ सरोवरमें गिर गया। सरोवरके जलमें गिरते ही उस कौएने अपने शरीरको छोड़ दिया तथा विद्यापतिके देखते-ही-देखते उसने सुन्दर चतुर्भुज रूप धारण कर लिया। विद्यापतिने दिखा कि उसी क्षण गरुड़जी वहाँ उपस्थित हुए और उस अत्यन्त सुन्दर तेजस्वी चार भुजाओंवाले पुरुषको अपनी पीठपर बैठाकर वैकु
भक्तिका कोई साधन न करनेपर भी यह कौआ सहज ही वैकु
नहीं किया। साधारण कौआ होनेके कारण माँस और अन्य अभक्ष्णीय वस्तुओंको खानेवाला यह अत्यन्त अपवित्र पक्षी था, परन्तु इस सरोवरमें गिरनेमात्रसे ही इसकी ऐसी श्रेष्ठ गति हुई। अतएव क्यों नहीं यहीं प्राण त्यागकर मैं भी वैकु
चला जाऊँ?" ऐसा सोचकर विद्यापति भी वृक्षपर चढ़कर

सरोवरमें कूदनेके लिए प्रस्तुत हो गया। तभी आकाशवाणी हुई—"केवल मुक्ति प्राप्तकर वैकु
मत करो। तुम्हें सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिए अनेक महत्वपूर्ण सेवाएँ करनी हैं। धैर्य धारण करो, समय आनेपर तुम सब कु
इन्द्रद्युम्नके पास लौटकर उन्हें नीलमाधवके यहाँ होनेकी सूचना दो।"

इतनेमें विश्वावसु बहुत-से पुष्पों और पूजाकी अन्य सामग्रियोंके साथ लौटे और पूजाके समय उन्होंने विद्यापतिको अपने समीप बुला लिया। विद्यापतिने विश्वावसुकी अनुपस्थितिमें घटी घटनाओंका उनसे कोई उल्लेख नहीं किया। विश्वावसुने पूजाके लिए चन्दन और अन्य सामग्रियाँ तैयार की और दिनभर वे पूजन-अर्चन और स्तव-स्तुति इत्यादि विभिन्न प्रकारकी भक्तिमय क्रियाओंसे नीलमाधवकी सेवा करनेमें व्यस्त रहे। विद्यापति तो पहलेसे ही भगवान् श्रीनीलमाधवकी महिमा श्रवण करके उनके दर्शनके अभिलाषी थे और अब साक्षात् उनके वास-स्थानके माहात्म्यको देखकर वे अत्यन्त मुग्ध हो गये और अपने श्वसुरको नीलमाधवकी प्रेमपूर्वक सेवा करते देख उनका हृदय प्रफु

पूजा समाप्त होनेपर विश्वावसुने पुनः विद्यापतिकी आँखोंपर काली पट्टी बाँध दी और पुनः दोनों घरके लिए चल पड़े। वे बैलगाड़ीसे टेढ़े-मेढ़े रास्तेपर चलते हुए कु
उपरान्त घर पहुँचे। उस रात्रिमें नीलमाधवने स्वप्नमें विश्वावसुसे कहा—"विश्वावसु! यद्यपि तुमने बहुत समय तक मेरी सेवा की है और मैं तुमसे अत्यधिक सन्तुष्ट भी हूँ। तथापि अब मैं अपने एक प्रिय भक्त महाराज इन्द्रद्युम्नसे भव्य राजसिक सेवा ग्रहण करना चाहता हूँ। तुम चिन्तित मत होना और न ही क्षोभ करना।" जब विश्वावसुजीका स्वप्न टूटा तो वे अत्यन्त विचलित होकर सोचने लगे—"ओह! भगवान्

श्रीनीलमाधव अब महाराज इन्द्रद्युम्नके पास चले जायेंगे? मैं उनसे दूर होनेकी कल्पना भी नहीं कर सकता। यद्यपि भगवान् नीलमाधवने मुझे चिन्ता नहीं करनेके लिए कहा है, किन्तु यह कैसे सम्भवपर है कि मैं चिन्तित न होऊँ? विश्वावसु मन-ही-मन तो इस विषयपर सब समय गम्भीरतासे विचार कर रहे थे, किन्तु उन्होंने अपने स्वप्नकी बात किसीसे नहीं कही।

दो-चार दिनके बाद ही विद्यापतिने अपने अवन्ती नगरीमें जानेकी बात उठायी। विश्वावसु मन-ही-मन विचार करने लगे कि "अचानक विद्यापतिकी अवन्ती नगरी जानेकी इच्छा क्यों जागृत हो गयी? हो सकता है कि ये जाकर महाराज इन्द्रद्युम्नको भगवान् श्रीनीलमाधवके विषयमें सबकु
देगा तथा महाराज इन्द्रद्युम्न जोर-जबरदस्ती करके नीलमाधवको अपने साथ ले जायेंगे। भगवान् नीलमाधवने तो मुझे कहा ही है कि मैं महाराज इन्द्रद्युम्नसे भव्य राजसिक सेवा ग्रहण करना चाहता हूँ। किन्तु मैं नीलमाधवके बिना जीवित रहनेकी कल्पना भी नहीं कर सकता। मुझे क्या करना चाहिये? मेरा क्या कर्त्तव्य है?" इस प्रकारकी चिन्ता करते-करते विश्वावसुने निर्णय किया कि "क्यों न मैं इस विद्यापतिको ही यहींपर रोक लूँ। यदि ये जाकर महाराज इन्द्रद्युम्नको नीलमाधवके विषयमें बता ही नहीं पायेगा, तो उन्हें नीलमाधवके विषयमें पता ही कैसे चलेगा। अतएव जब तक सम्भव होगा, मैं इसे यहींपर बन्दी बना कर रखूँगा।" यह सोचकर विश्वावसुने एक प्रकारसे विद्यापतिको अपने घरके एक कक्षमें बन्दी बना लिया।

गृहमें बन्दी बने विद्यापतिने ललितासे कहा—"प्रिये! मेरी सहायता करो। मैं शीघ्र ही अपने राज्यमें लौटना चाहता हूँ। मैंने राजा इन्द्रद्युम्नको वचन दिया था कि मैं भगवान् नीलमाधवका पता लगाकर ही लौटूँगा। यदि तुम मुझे यहाँसे

मुक्त करा दो तो मैं तत्काल ही राजाको सपरिवार यहाँ ले आऊँगा और पुनः तुम्हारे साथ रहूँगा।"

ललिता सहायता करनेके लिए सहमत होकर बोली—"मैं अभी अपने पिताजीसे बात करूँगी।" तब वह अपने पिताके पास गयी और बोली—"यदि आपने मेरे पतिको कैदसे मुक्त नहीं किया तो मैं अभी आत्महत्या कर लूँगी।" ऐसा कहकर वह आत्महत्या करनेको उद्यत हो उठी। तब पुत्रीके प्रेमके वशीभूत होकर विश्वावसुने विद्यापतिको मुक्त कर दिया। मुक्त होनेपर विद्यापतिने ललिताको आश्वासन दिया—"तुम चिन्ता मत करना, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा।" यह कहकर विद्यापतिने शीघ्र ही महाराज इन्द्रद्युम्नके राज्यकी ओर प्रस्थान किया।

नीलमाधवका अन्तर्धान होना

विद्यापति मार्गमें बिना कहीं विश्राम किये निरन्तर चलते-चलते अन्ततः अवन्ती नगरी पहुँच गये। वह छह मासके उपरान्त अवन्ती नगरी लौटे थे। विद्यापतिने महाराज इन्द्रद्युम्नके समक्ष उपस्थित होकर उन्हें सूचित किया कि—"मैंने नीलमाधवको ढूँढ़ लिया है। कृपया आप मेरे साथ चलिये।" यह सुनकर महाराज इन्द्रद्युम्नकी प्रसन्नताकी सीमा न रही, जीवन पर्यन्त नीलमाधवकी सेवा करनेके उद्देश्यसे राजा इन्द्रद्युम्नने अपनी पत्नी, धन-सम्पदा, प्रजा और अपने सैनिकों और सेनापतियोंके साथ नीलमाधवको अपने राज्यमें लानेके लिए नीलाचलकी ओर प्रस्थान किया। उज्जैनसे प्रस्थानकर वे श्रीजगन्नाथपुरीसे सौ मील दक्षिणमें स्थित उस गाँवमें पहुँचे, जहाँ विश्वावसुका घर था। उस समय तक सरसोंके पौधे निकल आये थे तथा उनपर पीले-पीले फूल खिल रहे थे। विद्यापति उन पौधोंके द्वारा निर्मित पथके माध्यमसे राजा इन्द्रद्युम्नको नीलमाधवके मन्दिरकी ओर ले

गये। धकिन्तु वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि भगवान् नीलमाधव वहाँ विद्यमान नहीं है। राजा इन्द्रद्युम्नने सोचा कि भगवान् श्रीनीलमाधवके विग्रहको अवश्य ही विश्वावसुने गाँवमें ही कहीं छिपा दिया होगा। अतएव इसलिए उन्होंने अपनी सेना द्वारा उस गाँवको चारों ओरसे घेर लिया तथा विश्वावसु सहित सभी शबर लोगोंको बन्दी बना लिया।

महाराज इन्द्रद्युम्न निराश होकर रोने लगे। वे कु आसनपर महासागरकी ओर मुँहकरके बैठ गये और उन्होंने निश्चय किया—"जब तक मुझे भगवान् नीलमाधवके दर्शन नहीं होंगे, मैं कु
नहीं हुए, तो मैं प्राण त्याग दूँगा। मैं अपने समस्त राज्य, धन-सम्पदा, अपनी पत्नी और परिवारके साथ उनके दर्शनके लिए आया हूँ। परन्तु मुझे नीलमाधवके दर्शन नहीं हुए। ओह! मुझे प्राण त्याग देने चाहिये।" इसके उपरान्त वे प्रभुको स्मरणकर "हा नीलमाधव! हा नीलमाधव! हा नीलमाधव!" कहते हुए उन्हें पुकारने लगे। इतनेमें आकाशवाणी हुई—"हे राजन! शबर लोगोंको छोड़ दो। मैं इस जगत्में नीलमाधवके रूपमें तुम्हें दर्शन नहीं दूँगा, किन्तु मैं जगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा और सुदर्शन चक्र—इन चार रूपोंमें प्रकटित होऊँगा। महासागरके निकट स्थित बङ्किम मुहाना(१) के समीप प्रतीक्षा करो। दारु-ब्रह्म (लकड़ीके रूपमें स्वयं भगवान्) के रूपमें मैं वहाँ सागरमें आऊँगा। मैं एक विशाल, सुगन्धित, लाल वृक्षकी लकड़ीके रूपमें प्रकटित होऊँगा, उसपर सर्वत्र शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म आदिके चिह्न अङ्कित होंगे। मेरे उस दारु-ब्रह्म रूपको वहाँसे निकालकर तुम उससे चार श्रीविग्रह बनवाना और उन्हें मन्दिरमें स्थापितकर पूजा-अर्चना करना।"

---

(१) वर्त्तमानमें यह स्थान चक्रतीर्थके नामसे भी जाना जाता है।

यह सुनकर राजाने वहाँ श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव, श्रीसुभद्रा और सुदर्शनजीके विग्रहकी प्रतिष्ठाके लिए एक सुन्दर विशाल मन्दिरका निर्माण करवाया। मन्दिरके ऊपर एक कलश और उसके ऊपर एक चक्र स्थापित किया गया। महाराज इन्द्रद्युम्न श्रीब्रह्माके द्वारा मन्दिरकी प्रतिष्ठा करानेकी अभिलाषासे ब्रह्मलोकमें उपस्थित हुए, किन्तु उन्हें बहुत समय तक ब्रह्माजीकी अपेक्षा करनी पड़ी। जब बहुत समयके बाद उन्हें ब्रह्माजीके दर्शन प्राप्त हुए, तो उन्होंने ब्रह्माजीको अपना परिचय प्रदान किया तथा भगवान्‌की आकाशवाणीके विषयमें भी बताया। महाराज इन्द्रद्युम्नने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की—"हे प्रभु! स्वेच्छामय भगवान् श्रीजगन्नाथदेव कभी भी आविर्भूत हो जायेंगें, अतएव मेरी प्रार्थना है, आप कृपा करके शीघ्रातिशीघ्र मेरे साथ चलकर मन्दिरकी प्रतिष्ठा कर दीजिये।" ब्रह्माजी महाराज इन्द्रद्युम्नकी बातसे सहमत हो गये तथा उन्होंने स्वयं ही कहा—"महाराज! प्रभुके द्वारा निर्दिष्ट निर्धारित स्थानपर पहुँचकर हमें उनकी प्रतीक्षा करनी चाहिये।"

श्रीविग्रहोंका प्रकाश

महाराज इन्द्रद्युम्नने ब्रह्माजीके पास जानेसे पहले जिस विशाल मन्दिरका निर्माण किया था, वह पूर्ण रूपसे समुद्री बालूसे ढक गया था। एक बार गालमाधव नामके एक अन्य राजा उस स्थानसे गुजर रहे थे। अचानक ही उनका घोड़ा किसी नुकीली वस्तुसे टकराकर गिर पड़ा, जिससे राजाको भी कु

कि "देखो! यहाँपर क्या है?" राजाके आदेशसे सैनिकोंने उस स्थानसे बालू हटायी, तो देखा कि यह तो किसी मन्दिरका चूड़ा दिखायी दे रहा है। जब राजाको यह बात पता चली तो वह बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने अपने अनेकों कारीगरोंको उस स्थानसे बालूको हटाकर मन्दिरको साफ

करनेका आदेश दिया। यद्यपि बहुत परिश्रम करके उन सबने मन्दिरको साफ तो कर लिया, तथापि बालूको हटानेपर भी वह मन्दिर खण्डहर जैसा ही दिखायी दे रहा था। गालमाधव राजाने उस मन्दिरका पुनरुद्धारकर यह घोषणा कर दी कि—"मैं इस मन्दिरका निर्माता हूँ।"

जब महाराज इन्द्रद्युम्न पृथवीपर लौटे, तब तक हजरों वर्ष व्यतीत हो चुके थे तथा प्रायः सबकु
गया था। जब महाराज इन्द्रद्युम्न उस मन्दिरमें पहुँचे तब उन्हें पता चला कि वहाँ तो किसी अन्य राजाका अधिकार है। महाराज इन्द्रद्युम्नने राजा गालमाधवसे मिलकर उनसे कहा—"यह मन्दिर तुम्हारा नहीं है, मैंने ही इसे बनवाया था।" गालमाधव राजाने जब महाराज इन्द्रद्युम्नसे इसका प्रमाण माँगा, तब युग-युगान्तरसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाओंका कीर्त्तन करनेवाले काकभुषण्डीने, जो कि मन्दिर निर्माणके समय वहाँ उपस्थित थे, महाराज इन्द्रद्युम्न द्वारा ही मन्दिरके निर्मित होनेकी साक्षी दी।

ब्रह्माजीने भी इस बातका समर्थन करते हुए कहा—"महाराज इन्द्रद्युम्नने ही मन्दिरका निर्माण किया है। तुमने केवल इसका जीर्णोद्धार किया है।"

प्रमाणिक व्यक्तियोंकी बात सुनकर राजा गालमाधवने महाराज इन्द्रद्युम्नकी बातको स्वीकार कर लिया तथा उन्हें मन्दिरके सभी अधिकार प्रदान कर दिये।

श्रीकृष्णकी कृपासे किसी प्रकार राजा इन्द्रद्युम्नकी रानी गुण्डिचा उस समय भी धराधाममें ही थी। महाराज इन्द्रद्युम्न अपनी रानी गुण्डिचा तथा कर्मचारियों सहित समुद्रके तटपर स्थित बङ्किम मुहानेपर श्रीविग्रहकी प्रतीक्षा करने लगे। अन्ततः उन्हें एक दिन महासागरमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मादि चिह्नोंसे अङ्कित एक लाल वृक्षका तना दिखलायी दिया। महाराज अपने सैनिकों और हाथियोंकी सहायतासे उस लाल

वृक्षके तनेको समुद्रसे बाहर निकालनेका प्रयास करने लगे, किन्तु सफल नहीं हुए। अनेक हाथी और बलवान पुरुष, यहाँ तक कि उनकी समस्त सेना भी मिलकर उस तनेको समुद्रसे बाहर निकालनेमें असमर्थ रही।

पुनः आकाशवाणी हुई—"मेरे पुराने सेवक दयितापति विश्वावसु और उसकी पुत्री ललिता तथा उसके दामाद विद्यापतिको बुलाओ। एक ओरसे मुझे विश्वावसु उठायेगा और दूसरी ओरसे ब्राह्मण विद्यापति तथा उसकी पत्नी ललिता। मेरे लिए एक स्वर्ण रथ लाओ। मैं सहज ही बाहर आ जाऊँगा और तब तुम विग्रहका निर्माण और उनकी प्रतिष्ठाका आयोजन करना।" भगवान् नीलमाधवकी इच्छा और शक्तिसे विश्वावसु, ललिता और विद्यापति भी उस समय तक जीवित थे। उन सभीको आदर सहित वहाँ लाया गया। महाराज इन्द्रद्युम्नने एक स्वर्णके रथका निर्माण करवाया। महाराज इन्द्रद्युम्नने विश्वावसु, विद्यापति तथा ललितासे समुद्रके जलमें जाकर वृक्षके तनेको निकालनेके लिए निवेदन किया। वे तीनों स्वयंको वृक्षके तनेको उठानेमें अक्षम मानते हुए नीलमाधवसे कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगे—"जय जगन्नाथ! जय नीलमाधव! जय नीलमाधव! हमपर कृपा वर्षण कीजिये और कृपापूर्वक रथपर पधारिये।"

भगवान् नीलमाधवकी कृपासे तीनोंने सरलतासे उस तनेको उठाकर स्वर्ण रथपर रख दिया और तत्पश्चात् उस रथको बङ्किम मुहानासे वर्त्तमान श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरसे थोड़ी दूरीपर ही स्थित एक स्थानपर लाया गया। राजाने वृक्षके उस तनेको एक विशाल कक्षमें रख दिया और उड़ीसाके सभी शिल्पकारोंको आमन्त्रितकर कहा—"जो भी इस तनेसे श्रीविग्रहका निर्माण करेगा, वह अपार धन-सम्पत्तिका अधिकारी होगा।" बहुत-से प्रसिद्ध शिल्पकार श्रीविग्रहका निर्माण करने आये, किन्तु जैसे ही उनके लोहे आदिके साधारण औजार लोहेसे

भी कठोर उस लकड़ीको स्पर्श करते, उसी क्षण वे सभी औजार छिन्न-भिन्न हो जाते थे। तब एक वृद्ध किन्तु सुन्दर ब्राह्मण आगे आया। वह अपने साथ कु
था। वह बोला—"मेरा नाम महाराणा है। मैं अत्यन्त कु
शिल्पी हूँ और निश्चिय ही मैं श्रीविग्रहका निर्माण कर सकता हूँ।" वास्तवमें भगवान् नीलमाधव या जगन्नाथदेव स्वयं ही उस वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें प्रकटित हुए थे। वह ब्राह्मण पुनः बोला—"मैं श्रीविग्रहोंका निर्माण इक्कीस दिनोंमें कर दूँगा, परन्तु आपको यह वचन देना होगा कि तब तक इस भवनका द्वार बन्द ही रहेगा। भीतर केवल मैं अपने औजारोंके साथ रहूँगा। इक्कीस दिनोंके बाद मैं यह द्वार खोलूँगा, तब आपलोग श्रीविग्रहोंके दर्शन कर सकेंगे और तत्पश्चात् उन्हें मन्दिरमें स्थापितकर उनकी सेवा अर्चना कर सकेंगे। यदि किसीने इक्कीस दिनसे पहले ही द्वार खोल दिया, तो मैं कार्यको अधूरा ही छोड़कर चला जाऊँगा।" यह सुनकर राजाने उत्तर दिया—"मैं आपके निर्देशका अवश्य ही पालन करूँगा।"

ब्राह्मणने अपने औजारोंके सहित कक्षमें प्रवेशकर भीतरसे द्वार बन्द कर लिया। चौदह दिनके बाद कोई भी शब्द न सुनायी देनेके कारण महाराज इन्द्रद्युम्न चिन्तित हो गये। वे सोचने लगे कि "ब्राह्मणने चौदह दिनोंसे न तो कु
है, न ही पानीकी एक बूँद तक भी पी है। कहीं उसके प्राण तो नहीं छूट गये?" राजाके प्रधानमन्त्रीने उन्हें परामर्श देते हुए कहा—"महाराज! अभी द्वार मत खोलिये, इसके पीछे अवश्य ही कोई रहस्य है। इसे इक्कीस दिन पूरे होनेपर ही खोलना उचित है।" किन्तु रानी आग्रह करने लगी—"यदि वह आपके द्वारा द्वार न खोलनेके कारणसे ही मर गया, तो हमें ब्रह्म-हत्या (ब्राह्मणकी हत्याका) दोष लगेगा। अतएव कृपया शीघ्र ही द्वार खोल दीजिये।" ब्राह्मणकी आज्ञाका

उल्लङ्घन करनेके कारण अनिष्टकी आशङ्कासे द्वार खोलनेकी इच्छा न होनेपर भी रानीके बार-बार आग्रह करनेपर महाराज इन्द्रद्युम्न अपने सैनिकोंसे बलपूर्वक द्वारको खुलवाकर अन्दर प्रवेश कर गये।

कक्षमें ब्राह्मणको न पाकर महाराजके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। श्रीजगन्नाथदेव, श्रीबलदेव प्रभु, श्रीसुभद्रादेवी और श्रीसुदर्शन चक्र—इन चारोंके श्रीविग्रह भी वहाँ असम्पूर्ण अवस्थामें विद्यमान थे। उनके नेत्र और नासिकाएँ गोलाकार थीं, उनकी भुजाएँ आधी ही थीं, हाथ और पैर भी अभी कु

किसी एक अन्य घटनाक्रमके अनुसार या सम्भवतः अन्य किसी ब्रह्माण्डकी लीलाके अनुसार जब महाराजने द्वार खोला तो ब्राह्मणको अन्दर देखा। महाराजको देखते ही ब्राह्मणने कहा—"अभी तो केवल चौदह दिन ही बीते हैं, आपने अभीसे द्वार क्यों खोल दिया? विग्रहोंको पूर्ण करनेके लिए मुझे सात दिनोंकी और आवश्यकता थी। सम्भवतः भगवान् श्रीजगन्नाथदेवजीकी इच्छासे ही ऐसा हुआ होगा, नहीं तो आप भीतर नहीं आते और मैं बिना किसी बाधाके इन श्रीविग्रहोंको पूर्ण कर पाता।" यह कहकर वह ब्राह्मण शिल्पकार अदृश्य हो गया। उस समय महाराज और उनके कर्मचारियोंको आभास हुआ कि वह ब्राह्मण साधारण शिल्पकार नहीं था, वे तो स्वयं श्रीजगन्नाथदेव ही थे। भगवान्के श्रीविग्रहोंको असम्पूर्ण देखकर महाराज इन्द्रद्युम्न रोने लगे और अपने हृदयकी पीड़ाको प्रधानमन्त्रीको बताते हुए बोले—"अपने वचनको तोड़कर मैंने जघन्य अपराध किया है। मेरे लिए प्राण त्याग देना ही उचित है।"

तभी आकाशवाणीके द्वारा भगवान्ने राजाको आदेश देते हुए कहा—"चिन्ता मत करो। मैं स्वयं ही इसी रूपमें प्रकट होना चाहता था। इसका भी एक गूढ़ रहस्य है। इन

श्रीविग्रहोंको मन्दिरमें इसी रूपमें स्थापित करो। विद्यापतिकी ब्राह्मण पत्नीसे उत्पन्न पुत्र क्रमपूर्वक मेरी पूजा करें और उसकी शबर पत्नीसे उत्पन्न पुत्र मेरे लिए विविध प्रकारके व्यञ्जन बनायें। विश्वावसुके गाँवके दयिता और उनके वंशज रथ-यात्राके समय दस दिनों तक मेरी सेवा करें। वे दयिता ही श्रीबलदेव, सुभद्रादेवी और मुझे रथोंपर बैठाकर गुण्डिचा मन्दिरमें ले जायें। उन दिनों प्रत्येक वर्ष रथ-यात्रा, हेरा-पञ्चमी आदि उत्सवोंका विराट रूपमें आयोजन करना।"

तब श्रीजगन्नाथजीकी आज्ञाके अनुसार महाराज उन श्रीविग्रहोंको मन्दिरमें ले गये और उन्होंने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की—"हे ब्रह्मन्! अब आप बिना किसी विलम्बके कृपा करके भगवान् तथा भगवान्के श्रीमन्दिरकी प्रतिष्ठा कर दीजिये, ताकि हम नियमित रूपसे विधिवत् इनका अर्चन-पूजन कर सके। महाराज इन्द्रद्युम्नकी बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—"स्वयं प्रकाशित भगवान्के श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा करनेकी क्षमता तो मुझमें हैं नहीं। हाँ, मैं इस मन्दिरके चूड़ेपर एक ध्वजा बाँध देता हूँ। यदि कोई व्यक्ति दूरसे भी इस ध्वजाको देखकर दण्डवत्-प्रणाम करेंगे, तो उन्हें अनायास ही मुक्तिकी प्राप्ति होगी।" इतना कहकर ब्रह्माजीने मन्दिरके चक्रपर एक ध्वजा स्थापित की। तदुपरान्त भगवान् श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव, श्रीसुभद्रा तथा श्रीसुदर्शनजीका विधिवत् पूजा-अर्चन नियमित रूपसे होने लगा।

एक दिन महाराज श्रीइन्द्रद्युम्नने भगवान् श्रीजगन्नाथदेवसे कहा—"हे भगवान्! मैं आपसे एक वर माँगना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि आपके श्रीमन्दिरके द्वार केवल एक प्रहर अर्थात् मात्र तीन घण्टेके लिए बन्द रहे, जिससे सभीको अधिक-से-अधिक समय तक आपके दर्शन प्राप्त हो।" महाराज इन्द्रद्युम्नकी बात सुनकर भगवान् जगन्नाथने भङ्गी करते हुए कहा—"तब तो मुझे निद्राको दूर करनेके लिए

सब समय ही बीच-बीचमें कु
भगवान् श्रीजगन्नाथदेवकी बात सुनते ही महाराज इन्द्रद्युम्न गद्‌गद होते हुए कहने लगे—“अहोभाग्य! अहोभाग्य! प्रभु! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सारा दिन आपका भोजन चलेगा। आपके हस्तकमल कभी भी शुष्क नहीं होंगे।”

तब भगवान् श्रीजगन्नाथने महाराज इन्द्रद्युम्नको वर देते हुए कहा—“तब तुम जैसा चाहते हो वैसा ही करो। मुझे कोई आपत्ति नहीं। किन्तु इस वरमें तो तुमने जगत्-वासियोंके लिए ही सबकु
प्रस्तुत हुए हो। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने लिए भी कोई वर माँगो।”

राजाने कहा—“जिससे कोई भी व्यक्ति आपके श्रीमन्दिरको अपनी सम्पत्ति मानकर दावी न कर सके, इसलिए मैं आपसे वंशरहित होनेका वरदान माँगता हूँ। यदि मेरे वंशज होंगे तो वे मेरे प्राण छूटनेके पश्चात् सम्पत्तिके लिए परस्परमें लड़ेंगे और आपकी सेवामें किसीकी रुचि नहीं होगी। आपकी सेवाके लिए एकत्रित धनपर वे अपना अधिकार समझेंगे। मैं नहीं चाहता कि मेरे कु
यह मन्दिर मेरी सम्पत्ति है। श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव, श्रीसुभद्रा पर केवल मेरा अधिकार है। जो धन प्रणामीके रूपमें मन्दिरमें आ रहा है, वह केवल मेरे भोग-विलासके लिए है।”

भगवान्‌की सेवाके उद्देश्यसे प्राप्त धनका यदि कोई दुरुपयोग करता है, तो उसे अवश्य ही नरककी प्राप्ति होती है। संचालकको सेवाकी भावनासे सेवाकार्य करना चाहिये और उसे यह समझना चाहिये कि मन्दिरका धन उसके पास भगवान्‌की धरोहर है।

यह समस्त लीला (अर्थात् श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव, श्रीसुभद्रा और श्रीसुदर्शनजीके अद्भुत रूपमें आविर्भूत होनेकी लीला)

रानी गुण्डिचाकी प्रार्थनाके परिणामस्वरूप ही प्रकाशित हुई थी। इसीलिए श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और सुभद्राजी रथ-यात्राके समय जिस मन्दिरमें एक सप्ताह तक विश्राम करते हैं, उसका नाम रानी गुण्डिचाके नामपर 'गुण्डिचा मन्दिर' रखा गया। इस प्रकार श्रीजगन्नाथदेवजीकी आज्ञासे प्रति वर्ष बड़े समारोहसे रथ-यात्राका आयोजन किया जाता है। विश्वावसुके गाँवके दयिता श्रीविग्रहोंको मन्दिरसे लाकर रथोंपर बैठाते हैं और रथ-यात्रा महोत्सवके दसों दिन उनकी सेवा करते हैं। ललितासे उत्पन्न वंशज 'सुपकार' के नामसे जाने जाते हैं। नीच जातिमें जन्म होनेपर भी भगवान् श्रीजगन्नाथने उन्हें भोग रन्धनका दायित्व सौंपा था। ये सुपकार पाककलामें इतने निपुण होते हैं कि वे एक ही साथ सौ मन चावल, दाल और अन्य व्यञ्जन बना लेते हैं।

चन्दनयात्राके समय श्रीजगन्नाथकी समस्त देहपर चन्दनका लेप किया जाता है। उस समय श्रीमदनमोहनके नामसे विख्यात उनके विजय-विग्रहको नौका विहार कराया जाता है। इसके उपरान्त स्नानयात्राके समय सम्पूर्ण भारतके सभी तीर्थोंसे हजारों घड़ोंमें जल लाया जाता है, जिससे तीनों श्रीविग्रहोंका अभिषेक किया जाता है। अत्यधिक जलसे स्नान करनेके कारण भगवान् अस्वस्थ लीला करते हैं। उस समय पुनः स्वास्थ्य लाभके लिए लक्ष्मीजी भगवान्‌को अपने महलमें ले जाकर पन्द्रह दिनके लिए द्वार बन्द कर लेती हैं।

यद्यपि उपरोक्त उपाख्यानमें भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके प्राकट्यका इतिहास बतलाया गया है, तथापि इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि उन्होंने अपूर्ण श्रीविग्रहके रूपमें प्रकटित होनेकी इच्छा क्यों की? इस रहस्यका आगेके अध्यायोंमें वर्णन किया जायेगा।

तृतीय अध्याय

(अपूर्ण रूपमें श्रीविग्रहोंके प्रकट होनेका प्रथम रहस्य)

भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके ऐसे असम्पूर्ण रूपमें प्रकट होनेके कारणका वर्णन श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत गोस्वामियोंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें किया है। इसका लिखित रूपमें पूर्ण वर्णन कहीं भी उपलब्ध नहीं है, किन्तु यह केवल श्रीचैतन्य महाप्रभुके कृपापात्र उत्तम भक्तोंके हृदयमें ही प्रकटित है। श्रीसनातन गोस्वामीने स्वरचित श्रीबृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें इसके कारणका कु
उल्लेख किया जा रहा है।

श्रीकृष्णका जन्म गोकु
हुआ था। मथुरामें श्रीकृष्ण शिशुके रूपमें नहीं जन्में थे, अपितु वे सोलह वर्षके किशोर रूपमें देवकी और वसुदेवके समक्ष प्रकट हुए थे। उनके श्रीअङ्गमें सुनहरा पीताम्बर था, वे चमचमाते हुए स्वर्णके अलङ्कारोंसे सुशोभित थे। उनके शीशपर सोनेका मुकु
केश थे और चतुर्भुज होनेके कारण वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए थे। दूसरी ओर गोकु
उन्होंने यशोदाके गर्भसे अपनी छोटी बहनके साथ द्विभुज शिशुके रूपमें जन्म लिया था। वे पूर्ण रूपसे नन्दबाबा और यशोदाके ही पुत्र हैं। कहीं-कहींपर ऐसा वर्णन मिलता है कि श्रीकृष्ण वसुदेवजी और देवकीके पुत्र थे, परन्तु व्रजवासी इस बातको मान्यता नहीं देते हैं। क्योंकि व्रजमें कृष्णका नाड़ी-छेदनपूर्वक जन्म हुआ है, अतएव व्रजवासी मथुरामें

श्रीकृष्णके जन्मकी बातको कैसे मान सकते हैं। मथुरामें तो केवल उनका आविर्भाव होना ही माना जाता है।

व्रजमें श्रीकृष्णके जन्मके समय सभी व्रजवासी नन्दभवनमें हर्षोल्लाससे नन्दोत्सवमें सम्मिलित हुए थे और बधाईयाँ देनवालोंका ताँता टूटनेका नाम ही नहीं ले रहा था। नन्दबाबाने श्रीकृष्णके जन्मके आनन्दमें मुक्त-हस्तसे इतनी गायें, वस्त्र, आभूषण, धन-धान्यका दान किया, जो धनके अधिष्ठातृ देवता कु
उनका वैभव कम नहीं हुआ।

यशोदा मैया और नन्दबाबाने श्रीकृष्णका बहुत लाड़-प्यारसे लालन-पालन किया। व्रजमें श्रीकृष्णकी माखन-चोरी, दाम-बन्धन, गोचारण, सखाओंके सङ्ग क्रीड़ा, गोवर्धन-धारण, रासलीला आदि अनेकों मधुर लीलाएँ हुईं। व्रजमें ही उन्होंने पूतना, तृणावर्त, अघासुर, बकासुर आदि अनेकानेक दैत्योंका वध किया। कु
और बलदेवजीसे बोले—"कंसने आपलोगोंके माता-पिता देवकी और वसुदेवको बन्दी बना रखा है और वह उन्हें मारना चाहता है। अतएव आप मेरे साथ मथुरा चलकर उनकी रक्षा करें।" श्रीकृष्णने कहा—"मेरे माता-पिता तो यशोदा मैया और नन्दबाबा हैं। परन्तु वसुदेवजी मेरे पिताके मित्र हैं, अतएव जैसा भी हो उनकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है।"

श्रीकृष्ण और श्रीबलराम अक्रूरके साथ मथुरा गये, वहाँ उन्होंने कंसका वधकर देवकी और श्रीवसुदेवको कारागारसे मुक्त कराया और मथुराका राज्य उग्रसेनजीको लौटा दिया। देवकी और वसुदेवजी श्रीकृष्ण और बलरामको अपना पुत्र मानते थे। कंसने उन्हें अनेक वर्षों तक कारागारमें बन्दी बनाकर यातनाएँ दी थीं, इसलिए उन्हें सुख देनेके उद्देश्यसे श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ मथुरामें ही रहने लगे। जरासन्धके द्वारा बार-बार मथुरापर आक्रमण करनेके कारण वे सभी

मथुरावासियोंको एक ही रात्रिमें द्वारका ले गये। वहाँ श्रीकृष्णने सोलह हजार एक सौ आठ राजकु
किया। प्रत्येक रानीसे दस-दस पुत्र और एक-एक कन्याका जन्म हुआ।

श्रीनारदजी द्वारा गोपियोंकी महिमाका प्रकाश

एक बार श्रीनारदजी 'भगवान् श्रीकृष्णके सर्वोत्तम भक्त कौन हैं?'—इसे जाननेके लिए अनेकानेक स्थानोंपर भ्रमण कर रहे थे। इसी क्रममें वे एक बार द्वारकामें पधारे। वे इससे पूर्व क्रमशः इन्द्र, ब्रह्मा, शिवजी, प्रह्लाद और हनुमानसे भेंट करनेके उपरान्त पाण्डवोंके पास इन्द्रप्रस्थ पहुँचे थे। पाण्डवोंने उन्हें बतलाया कि वे भी श्रीकृष्णके इतने प्रिय नहीं हैं, जितने द्वारकावासी हैं। द्वारकावासी श्रीकृष्णके निजजन हैं, कोई उनके पिता हैं, कोई माता हैं, कोई भाई हैं, तो कोई पुत्र आदि सगे-सम्बन्धी हैं। पाण्डवोंकी बात सुनकर ही श्रीनारदजी द्वारिकामें पहुँचे और सबसे पहले उन्होंने रुक्मिणीके महलमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, मित्रविन्दा, नाग्नजितिके साथ श्रीकृष्णकी प्रायः सभी रानियाँ वहाँ उपस्थित थीं। नारदजीने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—"आप सभी बहुत सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि आपको श्रीकृष्णकी सेवाका सुयोग प्राप्त है। आप श्रीकृष्णकी सर्वाधिक प्रियाएँ उनकी रानियाँ हैं। आप समस्त जगतमें सर्वाधिक वन्दनीय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।"

नारदजीकी बात सुनकर रुक्मिणी और सत्यभामा दुःखी होकर बोलीं—"हे मुनिवर! आप क्यों हमारा उपहास कर रहे हैं? आप हमारा व्यर्थ ही गुणगान कर रहे हैं, क्योंकि हम जानती हैं कि विवाहके पचास वर्षोंके पश्चात् भी हम श्रीकृष्णको कभी भी प्रसन्न नहीं कर सकी हैं। हम अत्यन्त

रूपवती और समस्त कलाओंमें पारङ्गत होनेपर भी उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पायी हैं।"

रुक्मिणी बोली—"श्रीकृष्ण सदैव गोपियोंको ही स्मरण करते हैं। जब वे मेरे कक्षमें मेरी शय्यापर सोते हैं, तो निरन्तर रोते रहते हैं। कभी-कभी स्वप्नमें रोते हुए मेरे आञ्चलको पकड़कर कहते हैं—'हे राधिके! तुम कहाँ हो? मैं तुम्हारे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। हे ललिते! तुम कहाँ हो?' कभी-कभी तो करुण स्वरसे रोदनकर यशोदा मैयाको स्मरणकर कहते हैं—'मैया तुम कहाँ हो? मुझे भूख लगी है, मुझे अपनी गोदमें बिठाकर मक्खन-मिश्री खिलाओ।' कभी सखाओंको पुकारते हैं—'हे श्रीदाम! सुबल! मधुमङ्गल! तुम कहाँ हो? मैं तुम सबके बिना प्राण धारण नहीं कर सकता। अब गाय चरानेका समय हो गया है, तुम शीघ्र ही आ जाओ।' कभी वे अपनी गायोंको स्मरणकर बुलाते हैं—'श्यामली! धावली! कालिन्दी! गङ्गे! पिशाङ्गी! तुम सब कहाँ हो?' रात भर वे निरन्तर इसी प्रकार विलाप करते हैं। उनके अश्रुओंसे समस्त शय्या भीग जाती है। यह एक दिनकी ही बात नहीं है, ऐसा प्रतिदिन होता है। हम सब कौन हैं अथवा हम कहाँ हैं—यह बात उनके स्मरण पथपर भी नहीं आती है। हम तो केवल नाममात्रके लिए उनकी पटरानियाँ हैं, किन्तु उनका हृदय तो सदा व्रजमें ही रहता है। अतः हम अत्यन्त दुःखी रहती हैं, क्योंकि हम कदापि उनकी प्रिय नहीं बन सकी हैं। यदि हम उनकी प्रिया होतीं, तो वे गोपियोंकी भाँति हमारे भी—'रुक्मिणी! सत्यभामे!' इत्यादि नाम ले-लेकर पुकारते। परन्तु वे हमें कभी इस प्रकार स्मरण नहीं करते हैं।"

सत्यभामा बोली—"हे सखी! तुम सत्य कहती हो। कल रात्रिमें ही उन्होंने रोते हुए मेरी साड़ी खींचकर कहा—'हे राधे! हे राधे!' और मूर्च्छित हो गये। मैं उन्हें सान्त्वना

देनेका भी कोई उपाय नहीं सोच सकी। हम सब उनकी विवाहिता पत्नियाँ हैं तथापि इसका क्या रहस्य है? अत्यन्त रूपवती और सभी कलाओंमें निपुण होनेपर भी हम उन्हें प्रसन्न नहीं कर पातीं। मैं जानना चाहती हैं कि हम उन्हें कैसे सन्तुष्ट करें?"

तभी श्रीबलदेव प्रभुकी माता श्रीरोहिणीदेवीने वहाँ प्रवेश किया। वे बलदेव प्रभुके जन्मसे पूर्व ही कंसके भयसे व्रजमें रहती थीं और कंसके वधके समय तक व्रजमें ही रहीं थीं। उन्होंने श्रीयशोदा मैयाके साथ श्रीकृष्ण और बलदेवजीका लालन-पालन किया था तथा श्रीकृष्णके प्रति व्रजवासियोंके प्रेमका उन्हें साक्षात् अनुभव था। उनके वहाँ प्रवेश करनेपर सभी रानियोंने उठकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक आसन दिया।

जब वे आसनपर विराजमान हो गयीं, तो रानियाँ उनके समीप आकर प्रश्न करने लगीं—"हे माता! हम जानती हैं कि श्रीकृष्ण और बलदेवजीके बाल्यकालसे ही आप व्रजमें रहीं थीं। आप तो गोपियोंको भलीभाँति जानती हैं। गोपियाँ, यशोदा मैया और अन्यान्य व्रजवासी श्रीकृष्णसे कैसा प्रेम करते थे जिसके कारण अब भी श्रीकृष्ण उनके प्रेमके सदा-सर्वदा वशीभूत रहते हैं। हम व्रजकी महिमाको जानना चाहती हैं। हम जानना चाहती हैं कि व्रजवासियोंका श्रीकृष्णके प्रति वह अनूठा प्रेम कैसा है, जिस कारण वे उन्हें भुला ही नहीं पाते। पचास वर्षों तक श्रीकृष्णकी निरन्तर सेवा करनेपर भी हम उन्हें अपने प्रेमसे वशीभूत नहीं कर सकी हैं। वे सदा ही उन गोपियोंको राधे-राधे, विशाखे-विशाखे, ललिते-ललिते; कहकर पुकारते हैं, परन्तु हमारे विषयमें किसी प्रकारकी पूछताछ भी नहीं करते। वे कभी यह विचार भी नहीं करते हैं कि वे द्वारकामें रुक्मिणी और सत्यभामाके साथ हैं। ऐसा क्यों? व्रजगोपियोंमें ऐसी

क्या विशेषता है? उनके पास तो हमारे समान धन-सम्पत्ति भी नहीं है, न ही हमारे समान सोने, हीरे और मणियोंसे जड़ित आभूषण हैं। वे तो केवल फूलोंके आभूषण ही पहनती हैं। श्रीकृष्ण वहाँ स्वयं गाय चराने जाते थे और द्वारकामें तो वे राजाधिराज हैं तथापि वे सदैव व्रजवासियोंका ही चिन्तन क्यों करते हैं? उन्होंने अपना हृदय गोपियोंको क्यों दे दिया है? क्या वे कोई वशीकरण मन्त्र जानती हैं? गोपियोंके प्रेममें ऐसी क्या विशेषता है जिससे कि उन्होंने श्रीकृष्णके हृदयपर एकछत्र अधिकार कर लिया है? आप अवश्य ही उन गोपियों और व्रजवासियोंके प्रेमकी महिमाको जानती हैं। अतएव कृपाकर हमें कु

अपनी सखी यशोदा और व्रजवासियोंका स्मरण आते ही रोहिणीजीका हृदय भर आया और वे रोने लगीं। कु
रोनेके पश्चात् जब उनका मन थोड़ा हल्का हो गया, तब वे कु
वर्णन करने लगीं। इसी बीच कंसकी माता पद्मावती वहाँ आ गयीं। सौ वर्षसे अधिक आयु होनेके कारण उसका शरीर कु
पाती थीं।

व्रजवासियोंकी चर्चा सुनते ही पद्मावती क्रोधित होकर बोलीं—"गोप-गोपियोंकी चर्चा करना व्यर्थ है, वे लोग अत्यन्त दुष्ट, क्रूर और कृपण हैं। कंससे रक्षाके लिए वसुदेवने कृष्णको गोकु
वहाँ कृष्ण और बलदेवका ठीकसे लालन-पालन भी नहीं हुआ। यशोदा तो कृष्णको दूसरेका बालक ही समझती थी, अतएव इसलिए उसने कृष्णको कभी भरपेट दूध भी नहीं पिलाया। भूख लगनेपर वह दूसरोंके घरोंसे मक्खन चुरानेके लिए विवश हो जाता था। यदि वह चोरी करते पकड़ा जाता था, तो उस कोमल बालकको कठोर हृदयवाली यशोदा

रस्सियोंसे बाँध देती और छड़ी दिखाकर उसे डराती-धमकाती थी। उस समय भयभीत होकर वह रोते-रोते विनती करता था कि मुझे मत मारो। पाँच वर्षकी आयुमें जब सभी बालक गुरुकु
और बलदेवकी उस आयुमें नन्द और यशोदाने उन्हें गाय चरानेके लिए वनमें भेजना आरम्भ कर दिया। इतना ही नहीं, वनमें काँटे-कङ्कड़ोंसे रक्षाके लिए कभी उन्हें जूते-चप्पल भी नहीं दिये और न ही धूप-वर्षासे बचनेके लिए छाता ही दिया। वे सात वर्ष तक भोरसे सन्ध्या तक नन्दकी गाय चराते रहे और इसके बदलेमें उन्हें केवल कु
मिले। मेरा विचार है कि हमें गर्गाचार्यको बुलाकर भलीभाँति गणना करवानी चाहिये कि कृष्ण और बलदेवको गाय चरानेके लिए कितना वेतन मिलना चाहिये था और वास्तवमें नन्दने उनपर कितना धन व्यय किया। यदि नन्दने उनपर अधिक धन व्यय किया है, तो मेरे उदार हृदयवाले पति ब्याज सहित उससे दुगना धन नन्दको दे देंगे। और यदि हमारा नन्दसे कु
करते हुए उन्हें कह देंगे कि हमें कु

पद्मावतीकी बातें सुनकर रोहिणीजीको अत्यधिक क्रोध आ गया और वे बोलीं—"मैं जानती हूँ कि तुम कैसी पतिव्रता स्त्री[१] हो, अतएव तुम कभी भी व्रजवासियोंके प्रेमकी महिमाका अनुमान नहीं लगा सकती हो।" यह सुनकर पद्मावती अजीब-सा मुँह बनाकर वहाँसे चली गयी।

---

[१] यद्यपि पद्मावती उग्रसेनकी पत्नी थी, परन्तु कंस उग्रसेनका पुत्र नहीं था। क्योंकि एक समय युवावस्थामें जब पद्मावती अपनी सखियोंके साथ यमुनाके तटपर खेल रही थी, तब कामुक द्रुमिल नामक दैत्यने उसका सङ्ग किया था। जिसके फलस्वरूप ही कंसका जन्म हुआ था। अतएव यशोदाजीमें दोष दिखानेवाली उस पद्मावतीको किसी प्रकार वहाँसे भगानेके लिए क्रोध दिखाते हुए मैया रोहिणीने उस घटनाका स्मरण कराया था।

रोहिणीजीके द्वारा श्रीकृष्णकी व्रजलीलाओंका वर्णन

तब रोहिणीजीने सुभद्राको द्वारपर बैठाकर किसीको भी भीतर न आने देनेका निर्देश दिया। फिर वे गम्भीर होकर द्वारकाकी महिषियोंको व्रजवासियोंके भावोंके विषयमें बतलाने लगीं। वे बोलीं—"व्रजवासियोंका कृष्णके प्रति इतना प्रगाढ़ प्रेम है कि वे कृष्णके बिना प्राण भी धारण नहीं कर सकते हैं। कृष्णसे एक क्षणका वियोग भी उन्हें एक युगके समान प्रतीत होता है। जब पूतना छह दिनके कृष्णको लेकर आकाशमें उड़ गयी, तो यशोदाके मानो प्राण ही कृष्णके सङ्ग चले गये थे और वे मूर्च्छित हो गयीं थीं। पुनः कृष्णके स्पर्शसे ही उसकी मूर्च्छा दूर हुई थी। प्रौढ़ा गोपियाँ तो कृष्णको अपने पुत्रोंसे भी कहीं अधिक प्रेम करती थीं। गोपियोंकी तो बात ही क्या कहूँ, व्रजकी गायें भी कृष्णको देखे बिना अपने बछड़ोंको दूध नहीं पिलाती थी। व्रजके वृक्ष-लता, कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी और यहाँ तक कि नदी-सरोवर-पर्वत भी कृष्णसे प्रेम करते हैं।

कृष्ण गोपियोंके घरोंमें मक्खन चुरानेके बहाने उनका हृदय चोरी करने जाते थे। गोपियाँ मीठा मक्खन निकालकर उत्कण्ठापूर्वक कृष्णकी प्रतीक्षा करती थीं कि कब वह उनके घर चोरी करने जायेगा। फिर उल्हाना देनेके छलसे वे यशोदाको कृष्ण द्वाराकी गयी मक्खन-चोरीकी मधुर लीलाएँ सुनाने जाती थीं। एक दिन कृष्णने अपने ही घरमें मक्खनकी चोरी की और यशोदाने उसे पकड़ लिया। यशोदाने पूछा—'कन्हैया! तूने माखन खाया है?' तब कृष्णने अनायास ही कह दिया—'मैया! मैं नहीं माखन खायो।' यह सुनकर यशोदा बोली—'तो तेरे मुखपर माखन कैसे लगा है?' कृष्णने कहा—'यह तो मेरे सखाओंने बलपूर्वक मेरे मुखपर मल दिया है। मैं तो प्रातःसे सन्ध्या तक गैया चराने जाता हूँ, मेरे पास समय ही कहाँ है माखन चुरानेके लिए? और

आप मुझे चोर इसलिए कह रहीं हैं क्योंकि मैं आपका पुत्र नहीं हूँ, अतएव मैं कहीं जा रहा हूँ।'

यह सुनते ही यशोदाका हृदय विदीर्ण हो गया और वे फूट-फूटकर रोने लगीं। उसने तुरन्त कृष्णको अपनी छातीसे चिपका लिया और अपने अश्रुओंसे कृष्णको भिगो दिया। यशोदाके स्तनोंसे दूध झरने लगा और वे रोते-रोते कहने लगी—'कन्हैया! तैने नहीं माखन खायो।' कृष्णने यशोदाके आँसू पोंछे और मुस्कु
खायो।'"

रोहिणीजी जब श्रीकृष्णकी व्रजलीलाओंका वर्णन कर रही थीं, उस समय श्रीकृष्ण अपनी सुधर्मा सभामें महाराज उग्रसेन, वसुदेवजी, बलरामजी तथा अपने मन्त्रियोंके साथ राजकार्यके विषयमें विचार-विमर्श कर रहे थे। श्रीकृष्ण तो सर्वज्ञ हैं, अतएव वे रोहिणीजी द्वारा वर्णनकी जा रही अपनी लीलाओंके विषयमें जान गये।

रुक्मिणीजीके महलमें श्रीकृष्णकी व्रजसम्बन्धी मधुर लीलाओंका वर्णन चल रहा था, ऐसी स्थितिमें वे कैसे वहाँसे दूर रह सकते थे? अतएव श्रीकृष्ण सुधर्मा सभासे निकलकर झटपट रुक्मिणीजीके महलके द्वारपर पहुँचे। बलरामजी भी उनके मनोभावको समझकर शीघ्र ही उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गये। द्वारपर सुभद्रा पहरा दे रही थी। उसने दोनों भाइयोंको भीतर जानेसे रोक दिया। यह विचारकर कि उनके भीतर जानेसे उस कथा-वार्त्तामें विघ्न पड़ेगा, श्रीकृष्ण और बलरामजी सुभद्राके साथ द्वारपर कान लगाकर भीतर चल रही कथाओंका रसास्वादन करने लगे।

रोहिणीजी आगे बतलाने लगीं—"एक दिन कृष्ण और बलरामने यशोदासे कहा—'मैया, हम गाय चराने जाना चाहते हैं। हम गोप हैं और यही हमारी परम्परा है, इसलिए आप हमें जानेकी आज्ञा दीजिये।' यशोदा मैयाने कहा—'हमारे

महलमें अनेक सेवक हैं, वे ही गायोंको चरानेके लिए पर्याप्त हैं। और कान्हा! तुम्हारे चरण इतने कोमल हैं कि वनके काँटे-कङ्कड़वाले मार्गपर तुम चल नहीं पाओगे। तुम्हारी देह तो माखन जैसी सुकोमल है, सूर्यका प्रखर ताप तुम्हारे लिए कैसे सहनीय होगा? अतएव तुम सुखपूर्वक महलमें ही रहो।'

कृष्ण और बलरामके पुनः-पुनः आग्रह करनेपर यशोदा मैया बोली—'अच्छा, तुम निकट ही वृन्दावनमें बछड़ोंको चरा सकते हो, परन्तु तुम शीघ्र ही लौट आना।' तब यशोदा उनके लिए सुन्दर-सुन्दर जूते और छतरी लेकर आयीं, परन्तु कृष्ण बोले—'ये बछड़े तो हमारे पूजनीय हैं, इन्हें उपलक्ष्य करके ही गाय हमें दूध देती है। यदि आप मुझे जूते देना चाहती हैं, तो पहले इन सभीके लिए चार-चार जूते बनवा दीजिये। उनके लिए एक-एक छतरी ला दीजिये, तो मैं भी जूते और छतरी लूँगा। मैं उनका स्वामी नहीं बनना चाहता। गोप होनेके कारण मैं तो गैयाओं तथा उनके बछड़ोंका सेवक ही बनना चाहता हूँ।'

तत्पश्चात् जब कृष्ण और बलराम सखाओं तथा बछड़ोंको लेकर वनमें जाने लगे, तो यशोदा मैया और नन्दबाबा उनके साथ-साथ चलने लगे। पुत्रोंके वियोग और उनके अनिष्टकी आशङ्कासे उनका हृदय व्याकु
कृष्ण बार-बार उन्हें लौट जानेको कहते, परन्तु वे कु
क्षण रुककर फिर उसके पीछे-पीछे ही चलने लगते। तब कृष्ण उन्हें सान्त्वना देते हुए बोलते—'मैया! तुम चिन्ता मत करो। चमरी[१] गायोंके वन पथपर भ्रमण करनेसे उनकी पूँछके द्वारा मार्जित मार्गमें कहीं भी काँटे-कङ्कड़ नहीं रहते हैं। मैं तो केवल यमुना तटपर घने वृक्षोंकी छायामें बैठकर बछड़ोंको चरते हुए देखता रहूँगा और घरमें लौटनेके समय

---

[१] ऐसी गाय, जिसकी पूँछके बालोंसे चामर बनाया जाता है।

अपनी वेणु बजाकर इन्हें एकत्रित कर लूँगा। मुझे कोई भी कष्ट नहीं होगा, अपितु यह मेरे लिए आनन्ददायक ही होगा।' परन्तु यह सुनकर भी नन्दबाबा और यशोदा मैया उसके साथ ही चलते रहते। तब कृष्णने कहा—'मैं शपथ खाकर कहता हूँ—मैं अति शीघ्र ही लौट आऊँगा' यह सुनकर नन्द और यशोदा वहीं रुककर कृष्णको वनमें जाते हुए देखते रहे। जब कृष्ण वनमें प्रवेशकर दृष्टिसे ओझल हो गये, तब वे दोनों ऐसे निराश होकर नन्दभवनमें लौटे, जैसे कोई निर्धन व्यक्ति धन पाकर पुनः उसे खो दे।"

रोहिणीदेवी आगे बोलीं—"कृष्ण गोचारणके बहाने अपने सखाओंके साथ क्रीड़ा करने वनमें जाया करते थे। जब कृष्ण कभी सखाओंसे आगे चलते, तब सखा दौड़कर उनके पास जाने लगते और उनमें होड़ लगती कि कौन सबसे पहले कृष्णको स्पर्श करेगा? दोपहरके समय भोजन करनेके लिए कृष्ण बीचमें बैठते और सभी सखा अनेक मण्डलियाँ बनाकर कृष्णके चारों ओर बैठते। सभी सखा अपनी-अपनी भोजनकी पोटली खोलते और जो भी व्यञ्जन स्वादिष्ट लगता, उसे कृष्णके पास ले जाकर कहते—'कान्हा! यह खाकर देख तो, मेरी मैयाने कितना स्वादिष्ट व्यञ्जन बनाया है।' इस प्रकार सखा कृष्णको अपना जूठा खिलाते और कृष्ण बड़े प्रेमसे उसका आस्वादन करते।

द्वारकामें तुम लोग कृष्णको परम पुरुषोत्तम भगवान्‌के रूपमें भी देखती हो और कभी उनका चतुर्भुज रूपमें भी दर्शन करती हो, परन्तु व्रजवासी कभी भी कृष्णको भगवान् नहीं मानते हैं। व्रजवासी कृष्णको एक भोले-भाले गोपबालकके रूपमें केवल अपना पुत्र, सखा और प्रियतम मानते हैं। व्रजमें कृष्ण गोप वेशमें रहते हैं उनकी पगड़ीमें सुन्दर मोर पङ्ख और गलेमें पुष्पोंकी वैजयन्ती माला सुशोभित होती है। जब कृष्ण अधरपर वेणु रखकर मधुर तान छेड़ते हैं, तो

व्रजवासी अपने सभी कार्य भूलकर केवल वेणुनादकी मधुर ध्वनिमें ही खो जाते हैं। चर-अचर सभीके स्वभाव विपरीत हो जाते हैं, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, मनुष्य और नदी-झरने स्तम्भित हो जाते हैं और पत्थर पिघलने लगते हैं। गोपियोंपर तो वेणुनादका एक अनिर्वचनीय प्रभाव होता है।"

गोपियोंके प्रेमकी महिमा

[यद्यपि श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा विरचित श्रीबृहद्-भागवतामृतमें इस प्रसङ्गके अन्तर्गत श्रीरोहिणी मैया द्वारा व्रजगोपियोंकी प्रेम-महिमाका संक्षेपमें वर्णन किया गया है तथापि रथ-यात्राके समय श्रीमन् महाप्रभु द्वारा आस्वादित भावोंको विस्तारसे वर्णन करनेके लिए यहाँपर इसका विस्तारसे वर्णन किया जा रहा है।]

राधा, ललिता, विशाखा, चन्द्रावली आदि व्रजाङ्गनाएँ कृष्णकी समवयस्का (अर्थात् उनके समान आयुकी) हैं और वे बचपनसे ही कृष्णके साथ स्वच्छन्द रूपसे खेलती-कूदती थीं, इसलिए इनमें परस्पर गाढ़ा अनुराग है। वे कृष्णके बिना एक पल भी रह नहीं सकतीं थी। परन्तु आयु वृद्धिके साथ उनमें लज्जा और संकोच आदि प्रकट होने लगे। गोपियोंका अन्यत्र विवाह होनेसे वे परवधुएँ हो गयीं और कृष्ण उनके लिए परपुरुष हो गये। किशोर अवस्थामें परस्पर प्रेमवृद्धि होनेपर भी मिलन दुर्लभ हो गया। गोपियाँ पहले तो कु
लोकलज्जा और गुरुजनोंके भयसे अपने भावोंको प्रकाशित नहीं होने देती थीं। किन्तु कृष्णके वेणुनादके श्रवणसे गोपियाँ कु
जाती और वे अपने हृदय स्थित अनुरागको छिपानेमें समर्थ न हो पाती। परस्पर एकत्रित होकर कृष्णकी वेणुमाधुरीका वर्णन करने लगतीं। वर्णन आरम्भ करते ही कृष्णकी त्रिभङ्ग-ललित रूपराशि, उनकी गमनभङ्गी, बङ्किम दृष्टि,

मन्द-मन्द मुस्कान आदि गोपियोंके हृदयमें स्फु
प्रेमावेशमें विभोर हो जातीं। कोई-कोई गोपी अपनी सखीको ही कृष्ण समझकर उसे आलिङ्गनकर कृष्णमिलनरूप आनन्द-सिन्धुमें निमग्न होने लगतीं। महाभाववती गोपियाँ अपने प्रेमकी स्वभावसुलभ अतृप्तिके कारण कृष्णसे मिलनेके लिए सर्वदा आतुर रहतीं। किन्तु लज्जाने उनके पाँवोंमें बेड़ियाँ डाल रखी थीं, अतएव उनका कृष्णसे मिलन सम्भव नहीं हो पाता था। जब भावोंके प्रबल वेगसे उन गोपियोंका चित्त स्थिर नहीं हो पाता था। तब वे अवहित्था भावसे कृष्णकी माधुरीका परस्पर इस प्रकार वर्णन करने लगती थी—'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः—प्यारी सखियो! तुम लोग गृहजालकी शृंखलाओंमें आबद्ध रहकर विधाता द्वारा दी हुई नेत्र आदि इन्द्रियोंको केवल विफल ही कर रही हो। अतएव जितनी जल्दी हो सके, गृहरूप कारागारसे निकलकर वृन्दावनमें चली चलो और वहाँ एक अवर्णनीय परम अद्भुत वस्तुके दर्शनसे अपने नेत्र आदि समस्त इन्द्रियों सहित अपने जन्मको सार्थक कर लो।'

व्रजाङ्गनाएँ जिनका भी कृष्णके साथ किसी प्रकारसे तनिक भी सम्बन्ध देखती थीं, उसीको परम सौभाग्यशाली मानती थीं और दीनतावशतः अपनेको अत्यन्त दुर्भागिनी समझती थीं। अतएव वे कहने लगती थी—

धन्याः स्म मूढगतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२१/११)

'अरी सखि! जब नन्दनन्दन श्यामसुन्दर विचित्र वेष धारण करके अपनी वेणुपर मधुर तान छेड़ते हैं, तब अज्ञानतम पशु-योनिमें जन्म ग्रहण करनेके कारण मूढ़

बुद्धिवाली ये हिरणियाँ भी उसे सुनते ही अपने पति कृष्णसार हिरणोंके साथ श्रीकृष्णके पास आ जाती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उन्हें निहारने लगती हैं। निहारती क्या हैं, सखि! अपनी कमल जैसी बड़ी-बड़ी आँखोंकी तिरछी कटाक्षोंके द्वारा वे उनका अर्चन करती हैं और श्रीकृष्णकी प्रेमभरी चितवनके द्वारा किये गये उनके सत्कारको स्वीकार करती हैं। वास्तवमें उन हिरणियोंका ही जीवन धन्य है। सखि, हम वृन्दावनकी गोपियाँ होनेपर भी इस प्रकार स्वयंको समर्पित नहीं कर सकती हैं। हमारे घरवाले हमपर अनेक प्रकारसे अंकु
विडम्बना है? हाय! हम क्यों न यह देह त्यागकर हरिणीका जन्म लें, जिससें हम श्रीकृष्णका निर्विघ्न दर्शन तो कर सकेंगी।'"

श्रीरोहिणीजीने आगे कहा—"गोपियोंका कृष्णसे प्रेम किसी सामाजिक सम्बन्धपर आधारित नहीं है, अपितु उनका वह प्रेम किसी भी हेतुसे रहित पूर्णता स्वभाविक है। बाल्यकालसे ही उन्होंने अपना हृदय और सर्वस्व कृष्णके चरणोंमें अर्पित कर दिया था। वे कृष्णसे धन, आभूषण, भवन आदि किसी भी सांसारिक वस्तुकी अपेक्षा नहीं करती हैं, उनका तो कृष्णके प्रति निस्वार्थ प्रेम है। वे सदा-सर्वदा कृष्णको प्रसन्न करनेके लिए ही उनकी सेवा करती हैं। व्रजाङ्गनाएँ यदि शृङ्गार भी करती है, तो केवल कृष्णको प्रसन्न करनेके लिए। श्रीमती राधिकाका भाव तो ऐसा है कि—'यदि कृष्णकी प्रसन्नताके लिए मुझे अपार दुःख हो, तो वह दुःख मेरे लिए सर्वोत्तम सुख है।' यहाँ द्वारकामें तुमलोग कृष्णकी पत्नियाँ हो, प्रियतमा नहीं। तुम कृष्णसे अच्छे-अच्छे वस्त्र, आभूषण और अन्य उपहारोंकी अपेक्षा करती हो। और एक विशेष बात यह है कि तुम्हारा प्रेम अनेक भागोंमें विभक्त है। तुम्हारे पति कृष्णके अतिरिक्त तुम्हारे दस-दस पुत्र और

एक-एक पुत्री है। इस प्रकार तुम्हारा प्रेम पति और ग्यारह सन्तानोंमें—बारह भागोंमें बँटा हुआ है। परन्तु गोपियोंका—कृष्णके प्रति प्रेम अखण्ड है, उन्होंने अपने पतियोंको त्याग दिया है, उनकी कोई सन्तान नहीं है, वे घरके कार्य करते हुए भी सदा कृष्णका ही चिन्तन करती हैं। वे दधि-मन्थन, भोजन बनाने, गो-दोहन, घरमें झाड़ू-बुहारी आदि सभी कार्य करते समय सदा कृष्णकी रूप-लीला माधुरीका ही चिन्तन करते हुए गान करती हैं—'गोविन्द-दामोदर-माधवेति, गोविन्द-दामोदर-माधवेति।' इस प्रकार गोपियोंका कृष्णके प्रति समर्पण और प्रेम अखण्ड और सम्पूर्ण है।

श्रीकृष्णका प्रेम भी अनेक भागोंमें विभक्त है। यद्यपि कृष्णका व्रजवासियोंके प्रति विशेष प्रेम है, परन्तु इसके साथ-साथ वे अपने मथुरा, द्वारका और विश्वके अन्य भागोंमें स्थित भक्तोंका भी परित्याग नहीं कर सकते। जो भी श्रीकृष्णको प्रेम और आर्तिसे स्मरण करता या पुकारता है, वे उसीके निकट चले जाते हैं। भक्तोंको श्रीकृष्ण भी सदैव स्मरण करते हैं और उनसे दूर होनेपर विरहका अनुभव करते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णका प्रेम भी बहुत भागोंमें विभाजित है, परन्तु गोपियोंका प्रेम अखण्ड है और इसी कारणसे श्रीकृष्ण गोपियाँको सर्वदा स्मरणकर उनसे विरहका अनुभव करते हैं।"

रोहिणीजी आगे कहने लगीं—"एक समय शरदपूर्णिमाके दिन रात्रिके प्रारम्भमें पूर्व दिशामें उदित पूर्णचन्द्रको और हरे कोमल पत्तों और विकसित पुष्पोंसे लदे हरे-भरे वृक्षोंसे परिपूर्ण वृन्दावनकी अपूर्व शोभा और सौरभने कृष्णके हृदयमें व्रजरमणियोंके साथ रासक्रीड़ाकी इच्छाको जाग्रत कर दिया। कृष्णने अपनी वेणुपर मधुर नाद छेड़ा। उस मधुर वेणुनादने गोपियोंके हृदयमें सुप्त कामको जगा दिया। उस समय कोई गोपी गो-दोहनकर रही थी, कोई चूल्हेपर दूध

औटा रही थी और कोई रोटी बना रही थी, कोई परिवारके सदस्योंको भोजन परोस रही थी, कोई पतिकी सेवाकर रही थी, कोई बच्चेको दूध पिला रही थी,—वे सब जो-जो कार्य कर रहीं थीं, उसे वहीं छोड़कर कृष्णकी ओर दौड़ पड़ीं। कोई गोपी श‍ृङ्गारकर रही थी और उसने एक ही आँखमें अञ्जन लगाया था, किन्तु उसी समय उसने जैसे ही वंशीध्वनि श्रवण की, वह दूसरी आँखमें अञ्चन लगानेकी बातको भूलकर ही दौड़ पड़ी। कोई वस्त्र पहन रही थी, तो वह ऊपरका वस्त्र नीचे और नीचेका वस्त्र ऊपर पहनकर तीव्र गतिसे चल पड़ी। एक क्षणका भी विलम्ब उन्हें असहनीय था। उनके पति, सास-श्वसुरने पूछा—'कहाँ जा रही हो?', परन्तु उनके कर्ण-कु
आधिपत्य कर लिया था, अतएव वे उनकी वाणी कैसे सुनतीं? वे उनकी बातोंको अनसुनाकर ही आगे बढ़ गयी तथा शीघ्रतासे वहाँ पहुँची, जहाँ कृष्ण विराजमान थे।

जब गोपियाँ कृष्णसे मिली तो रास आरम्भ हुआ। रासमें गोपियाँ कृष्णके साथ नाचने-गाने लगीं। कृष्ण मधुर स्वरमें गाने लगे, तो कोई गोपी उनके साथ स्वर-में-स्वर मिलाकर गाने लगी। वह कृष्णकी अपेक्षा और भी ऊँचे स्वरसे राग अलापने लगी, तब कृष्णने 'साधु-साधु' कहकर उस गोपीकी प्रशंसा की। एक और गोपीने उसी रागको 'ध्रुपद' में गाया, तो कृष्णने कहा—'अति सुन्दर! ऐसा गान तो मैं कदापि नहीं गा सकता।' जब बहुत देर तक नृत्य-गीत आदि विहार करनेके कारण गोपियाँ थक गयी, तो उनके मुखमण्डलपर प्रकटित स्वेद बिन्दुओंको कृष्णने अपने सुकोमल, सुगन्धित और सुखप्रद हस्त-कमलोंसे पोंछ दिया और गोपियाँ भी अपनी मनोहारी तिरछी चितवन और मीठी मुसकानसे कृष्णका सम्मान करने लगी।"

श्रीकृष्णसे निःस्वार्थ प्रेमके कारण गोपियोंने अपना सर्वस्व त्याग दिया, यहाँ तक कि लोक-मर्यादा और स्त्रीके लिए अति दुस्त्जय लज्जा और आर्यधर्मका भी परित्याग कर दिया। इसलिए श्रीकृष्णने स्वयं रासलीलाके प्रसङ्गमें गोपियोंसे कहा—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृंखलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भा॰ १०/३२/२२)

हे प्यारी गोपियो! मेरे साथ तुम्हारा मिलन सर्वथा निर्दोष और निर्मल—निजसुखकी कामनाके लेशसे भी रहित विशुद्ध प्रेममय है। तुमने घर-गृहस्थीकी दुष्कर बेड़ियोंको तोड़कर तथा लोक-मर्यादाका उल्लङ्घनकर मेरा भजन किया है। मैं देवताओं जैसी लम्बी आयु प्राप्त करके भी तुम्हारे इस प्रेम, त्याग और सेवाका बिन्दुमात्र भी बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ। तुम अपने सौम्य-स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो, किन्तु मैं तो तुम्हारे प्रेमका सदा ऋणी ही हूँ और रहूँगा।"

गोपियोंकी रतिको समर्थारति कहते हैं, क्योंकि गोपियाँ अपने प्रेमसे श्रीकृष्णको वशीभूत करनेमें समर्थ हैं। गोपियोंका प्रेम किसी सामाजिक सम्बन्धपर आधारित नहीं है। पत्नीके सम्बन्धके कारण द्वारकाकी महिषियोंकी रतिको समञ्जसा कहते हैं। महिषियोंका प्रेम श्रीकृष्णको वशीभूत करनेमें सक्षम नहीं है। रसशास्त्रोंमें प्रेमके विभिन्न स्तरोंका वर्णन है यथा— प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, रूढ़, अधिरूढ़, भाव, महाभाव, मोदन, मोहन और मादन। द्वारकाकी महिषियोंका प्रेम अनुरागकी स्थिति तक पहुँच सकता है। कभी-कभी उनमें महाभावका आभास होता है और कभी अल्प मात्रामें वे दिव्योन्माद और चित्रजल्प जैसी अवस्थाओंका भी अनुभव

करतीं हैं। महिषियोंके अष्टसात्त्विकभाव प्रदीप्त अवस्था तक नहीं पहुँच पाते। उनका भाव साधारण रूपसे धूमायित अवस्था तक ही पहुँच पाता है, जिसकी तुलना धुएँसे ढकी अग्निसे की जा सकती है। परन्तु कभी-कभी उनका भाव ऐसे स्तरपर पहुँच जाता है, जहाँ प्रेमकी ज्वाला धुएँसे ढकी नहीं रहती। तथापि महिषियोंके उस स्तरीय प्रेमकी ज्वालाकी लपटें इतनी ऊँची नहीं जा सकती जितनी ऊँची गोपियों की। गोपियोंके प्रेमकी ज्वालाकी लपटें धुएँसे रहित होती है तथा उच्चत्तम स्तर तक पहुँच जाती हैं।

श्रीमती राधाजीकी सर्वोत्कर्षता

इसके उपरान्त रोहिणीदेवी श्रीमती राधारानीके प्रेमके महात्म्यका वर्णन करने लगीं—"एक समय कृष्ण अपनी हजारों गायों तथा दाम, श्रीदाम, मधुमङ्गल और हजारों-हजारों सखाओंके साथ गोचारणके लिए जा रहे थे। कु
श्वेतवर्णकी, कु
उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे गङ्गा, यमुना और सरस्वती—तीनों नदियाँ एक स्थानपर मिलनेके उपरान्त विभिन्न दिशाओंमें प्रवाहित हो रही हों। कई मील तक केवल गायोंके सिर और शरीर ही दिखायी पड़ रहे थे। व्रजवासी अपने-अपने घरोंसे निकलकर कृष्णके दर्शनके लिए मार्गमें खड़े हो गये। नन्दबाबा और यशोदा मैया कृष्णके साथ-साथ चल रहे थे। व्रजवधुएँ, जो गुरुजनोंके भयसे बाहर नहीं जा सकीं, वे झरोखों और द्वारोंकी आड़से झाँक रही थीं। कृष्णने देखा कि एक झरोखेंकी आड़में श्रीराधाजी अपनी तिरछी चितवनसे उनका अर्चन कर रही हैं और कृष्णने उसे प्रेमपूर्वक स्वीकार किया।"

रोहिणीजी आगे कहने लगीं—"राधारानीकी तिरछी चितवनसे कृष्णके हाथोंसे वंशी छूट गयी, उनका मोर मुकु

उनका पीताम्बर भी अस्त-व्यस्त हो गया तथा वे मूर्च्छित होकर गिरने ही वाले थे कि मधुमङ्गलने उन्हें सँभाला और झकझोरते हुए कहा—'यह क्या कर रहे हो? बाबा और मैया साथमें हैं।' इस प्रकार मधुमङ्गलके कहनेसे कृष्णको पुनः बाह्य आवेश आया।

एक समय राधा और कृष्ण ललिता आदि सखियोंसे परिवेष्टित होकर विविध प्रकारके प्रेममय लीला-विलासमें मग्न थे। राधारानी कृष्णकी गोदमें बैठी हुई थीं। उसी समय एक भ्रमर राधारानीके चरणकमलोंके पास इधर-उधर मँडराता हुआ उन चरणोंको कमलपुष्प समझकर उनका मधु पान करनेके लिए बार-बार चरणोंके चारों ओर चक्कर लगा रहा था। राधारानी भयभीत होकर उसे भगानेकी चेष्टा तो कर रही थीं, किन्तु वह पुनः-पुनः वहीं उनके चरणोंपर आकर मँडराता रहा। राधारानीको भयभीत देखकर मधुमङ्गलने अपनी लठियासे उस भ्रमरको बहुत दूर भगा दिया और वह लौटकर राधाजीको इस प्रकार कहने लगा—'मैंने मधुसूदनको यहाँसे बहुत दूर भगा दिया है। वह यहाँसे चला गया, अब नहीं लौटेगा।' मधुमङ्गलकी उस बातको सुनकर कृष्णकी गोदीमें बैठी होनेपर भी राधिकाने ऐसा समझा कि मधुसूदन (कृष्ण) मुझे यहाँ छोड़कर चले गये। वह यह भी समझ नहीं पायी कि भ्रमरका भी एक नाम मधुसूदन है और हाय-हाय करती हुई विरहसे कातर हो गयीं। वह बार-बार 'हा प्राणनाथ! कहाँ चले गये? हा प्राणनाथ! कहाँ चले गये?'—इस प्रकार रोदन करने लगी। राधारानीके इस अद्भुत प्रेमवैचित्र्य भावको देखकर कृष्ण भी यह भूल गये कि मेरी प्रियतमा राधिका मेरी गोदमें ही है। वे भी 'हा प्रिये! हा प्रिये!' कहकर रोदन करने लगे। दोनोंकी आँखोंसे आँसू और शरीरसे पसीनेका जल निकलकर बहने लगा तथा दोनों मूर्च्छित हो गये। उनकी ऐसी दशाको देखकर सखियाँ भी

अचेतन हो गयीं। उस समय राधारानीकी सारिका 'राधानाम' और शुक 'कृष्णनाम' का जोर-जोरसे उच्चारण करने लगे। इस प्रकार दोनोंका नाम एक-दूसरेके कानोंमें प्रवेश करनेपर दोनों बाह्य ज्ञान प्राप्तकर परस्पर एक-दूसरेको सतृष्ण नयनोंसे देखने लगे। क्रमशः सखियाँ भी चेतन होकर जय-जय शब्द करने लगीं। फिर तो उनके आनन्दकी सीमा ही नहीं रही।

तब वहींपर श्रीकृष्णने विचार किया—'मैं अपनी प्रियतमा राधिकाके निकट रहकर भी उसकी विरह वेदनाको शान्त करनेमें असमर्थ रहता हूँ। अर्थात् भावी विरहके तापसे वे सदा झुलसती रहती हैं और ऐसी अवस्थामें मैं राधिकाको समझानेका कोई उपाय भी नहीं देखता हूँ। परन्तु जब मैं इनसे दूर होता हूँ, तो वे विप्रलम्भ अवस्थामें मेरा चिन्तन करते-करते भावमें विभोर हो जाती हैं तथा तमाल वृक्षसे हँस-हँसकर आलाप करती हैं, सखियोंके साथ विनोद करती हैं और कभी मान भी करती हैं। इसके विपरीत मेरे अत्यन्त समीप रहनेपर भी विप्रलम्भकी स्फूर्ति होनेसे मेरे लिए विरहमें कातर होकर रोदन करती हैं। राधिकाके निकट रहकर भी मैं उन्हें सान्त्वना नहीं दे पाता हूँ। (यही श्रीमती राधारानीका सर्वोत्तम मादनभाव है, जो केवल श्रीमती राधारानीमें ही देखा जाता है। ललिता आदि सखियोंमें भी इसका प्रकाश नहीं देखा जाता। इस मादनभावमें आश्चर्यजनक रूपसे सम्भोग और विप्रलम्भ आदि परस्पर विरोधी सभी प्रकारके भावोंका भी समावेश देखा जाता है।) अतः मेरा इनसे दूर रहना ही इनकी सान्त्वनाका एकमात्र उपाय हो सकता है, क्योंकि उस विप्रलम्भ अवस्थामें मेरी स्फूर्ति होनेसे अथवा मेरी कान्ति जैसे तमाल वृक्षादिको देखनेसे 'ये मेरे प्रियतम हैं' ऐसा मानकर राधिकाका विरह-ताप कु

ऐसा सोचकर श्रीकृष्णने मन-ही-मन कहीं दूर प्रवासका निश्चय किया। यही उनके वृन्दावनसे मथुरा या द्वारका जानेका प्रधान कारण हुआ।"

श्रीकृष्ण रसके सागर हैं। वे स्वयं रस और रसिक अर्थात् रसका आस्वादन करनेवाले हैं। वे युगपत् एक-रस और अनेक-रस हैं। जब वे एक-रस होते हैं, तब तीनों लोकोंमें, यहाँ तक कि गोलोक वृन्दावनमें भी जो कु
वह सब उनके भीतर विद्यमान रहता है। वे पूर्णतम और सर्वज्ञ हैं और उनके लिए कु
वे अनेक-रस होते हैं, तब उनमें कु
है और वे कु
भोक्ताके रूपमें जिस रसका आस्वादन करते हैं, उसे वे तो जानते हैं, परन्तु उनकी सेवामें श्रीमती राधिकाको क्या आनन्द प्राप्त हो रहा है, इससे अनभिज्ञ रहते हैं। श्रीकृष्णकी रूप, गुण, लीला और वेणु माधुरियोंके आस्वादनमें श्रीमती राधिकाको क्या आनन्द प्राप्त होता है, इसका अनुभव श्रीकृष्णको नहीं है। यद्यपि ये सभी मधुरिमाएँ श्रीकृष्णके भीतर विद्यमान हैं तथापि वे उसका आस्वादन नहीं कर पाते। इसलिए अपनी उन माधुरियों और राधाजीके भावोंके आस्वादन हेतु श्रीकृष्ण श्रीराधाजीके भावोंको अङ्गीकारकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें अवतरित होते हैं। श्रीमन् महाप्रभुने गोदावरीके तटपर श्रीराय रामानन्दसे, जो गोपी स्वरूपमें विशाखा सखी हैं, प्रेमकी शिक्षा ग्रहण की थी। शचीनन्दन गौरहरि श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाओंमें एक और अनेक—दोनों रसोंका मिश्रण देखनेको मिलता है। श्रीकृष्णमें एक-रस और राधाकृष्ण मिलित तनु होनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभुमें अनेक-रस पूर्ण रूपमें विद्यमान हैं।

श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और सुभद्राजीके रूपका प्रकाश

इस प्रकार रोहिणी मैया व्रजमें श्रीकृष्णकी अनेक लीलाओंका वर्णन करती जा रही थीं और द्वारकाकी महिषियाँ अत्यन्त विस्मित होकर श्रवण कर रही थीं। व्रजलीलाका वर्णन करते-करते रोहिणी मैयाका हृदय द्रवित होने लगा। उधर द्वारपर खड़े श्रीकृष्ण व्रजकी मधुर लीलाओंको सुनकर उसमें डूब गये और व्रजवासियोंके प्रेमको स्मरणकर उनका हृदय भी द्रवित होने लगा। हृदयके द्रवित होनेके साथ-साथ उनके हाथ-पैर भी संकु
बलरामजीके हृदय भी गोपियोंके प्रेमकी महिमाका श्रवणकर द्रवित होने लगे। तीनोंके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा उनके हाथ, पाँव संकु
होने लगे। आश्चर्यसे उनके नेत्र विस्फारित हो गये। धीरे-धीरे उनका रूप श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्राके श्रीविग्रह जैसा हो गया।

अन्ततः रोहिणी मैया भी फूट-फूटकर रोने लगीं। वे आगे कु
हो गयीं। कथाके स्थगित होनेपर धीरे-धीरे श्रीकृष्णका स्वाभाविक रूप पुनः लौटने लगा। जब उनका रूप पूर्ववत् हो गया तो उन्होंने कक्षके भीतर प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि रोहिणी मैया मूर्च्छित पड़ी हैं और श्रीनारदजी अपनेको इस घटनाका दोषी मानकर एक ओर सहमेसे खड़े हैं। श्रीकृष्णको देखकर नारदजीने धीरेसे कहा—"मैंने ही रुक्मिणीजी और सत्यभामाजीसे कु
मैयाको देखते ही उनसे कु
कहने लगीं। इस प्रकार यह घटना घटी और मैं ही इसके लिए दायी हूँ।"

श्रीकृष्ण मुस्कु
घटनाके मूल कारण हैं, अतएव मैं आपसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ। आपके कारण ही मुझे आज बहुत दिनोंके उपरान्त व्रजकी महिमा श्रवण करनेका अवसर प्राप्त हुआ। मैं आपको वर देना चाहता हूँ, आप मुझसे कु
सकते हैं।”

यह सुनकर नारदजी अति प्रसन्न होकर बोले—“व्रजवासियोंकी महिमा श्रवणकर आप तीनोंका जो रूप प्रकट हुआ था, मैं चाहता हूँ कि इस जगत्में किसी स्थानपर आप ऐसे श्रीविग्रहोंके रूपमें सदा विद्यमान रहें, जिससे सारा विश्व आपके उस प्रेममय रूपका दर्शन कर सके। आपका ऐसा अनोखा रूप पतितोंका उद्धार करनेवाला है और उसके दर्शनसे जगत्के सभी व्यक्ति आपके हृदयमें विद्यमान भक्त-वात्सल्यको समझ पायेंगे। आपके ऐसे श्रीविग्रहोंका सम्पूर्ण जगतमें अर्चन-पूजन हो, तथा इनके इतिहासको श्रवणकर जगत्-वासियोंके हृदयमें आपके प्रति शुद्ध प्रेम उदित हो और उनका परम कल्याण हो।”

श्रीकृष्णने कहा—“तथास्तु! ऐसा ही हो। मैं इन तीन विग्रहोंके रूपमें सुदर्शन चक्रके साथ समुद्र तटपर स्थित जगन्नाथपुरीमें प्रकट होकर सदा वहाँ नीलाद्रि पर्वतपर निवास करूँगा और समस्त विश्ववासी मेरा दर्शन कर सकेंगे।”

श्रीकृष्णने इन तीन विग्रहोंके साथ सुदर्शन चक्रका उल्लेख क्यों किया? इसका कारण है कि ‘सुदर्शन’ का अर्थ होता है—अति-सुन्दर-दर्शन। सुदर्शन चक्र ही हमारे हृदयका शोधनकर, हमें दिव्य दृष्टि प्रदानकर श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्राके वास्तविक रूपके दर्शनके योग्य बनायेंगे। अन्यथा हम केवल उन्हें काष्ठकी मूर्त्तिके रूपमें ही देखेंगे और उनके वास्तविक रूप और सौन्दर्यका अनुभव नहीं कर पायेंगे। जब सुदर्शन

चक्र हमें दिव्य दृष्टि प्रदान करेंगे, तभी हम यह अनुभव कर सकेंगे कि भगवान् श्रीजगन्नाथदेव वास्तवमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दर ही हैं। भगवान् श्रीजगन्नाथके प्रकाट्यका यह इतिहास अत्यन्त मधुर है और जो व्यक्ति इसे श्रद्धासहित श्रवण करता है, उसके हृदयमें निश्चय ही व्रजप्रेमका उदय होता है।

चतुर्थ अध्याय

(अपूर्ण विग्रहोंका द्वितीय रहस्य)

भगवान् श्रीजगन्नाथजीके ऐसे अपूर्व रूपमें प्रकट होनेका एक और कारण भी है। यह कारण अत्यन्त गोपनीय है तथा केवल श्रीमन् महाप्रभु और उनके अनुयायी श्रीलरूप गोस्वामी, श्रीलसनातन गोस्वामी आदिके आनुगत्यमें भजन करनेवाले भक्तोंके हृदयमें ही प्रकाशित होता है।

जब श्रीकृष्ण व्रजसे मथुरा चले गये, तब सम्पूर्ण व्रज ही उनके विरहमें डूब गया। गोप और गोपियोंकी तो बात ही क्या, गौएँ भी घास चरने नहीं जातीं थी, बछड़े भी गैयाओंके स्तनोंसे दूधका पान नहीं करते थे, पक्षी चहचहाते नहीं थे तथा वृक्षों-सरोवरोंमें पुष्प नहीं खिलते थे। उन व्रजवासियोंकी देहकी समस्त क्रियाएँ ही स्थगित हो गयी थी। विराहाग्निमें तापित व्रजवासी केवल आँसू बहाते हुए किसी प्रकारसे अपने प्राणोंको धारण कर रहे थे। गोपियोंकी स्थिति तो अत्यन्त दयनीय थी और उनमें भी श्रीमती राधिकाकी तो मरणासन्न (मरने जैसी) दशा थी। विरहसे तड़पती हुई गोपियोंको जब मूर्च्छा आ जाती थी, उसी समय ही उन्हें विरह तापसे कु

श्रीकृष्ण भी द्वारकामें गोपियोंके विरहमें तड़पते थे और कभी-कभी श्रीराधा, ललिता, विशाखा आदिका चिन्तन करते-करते मूर्च्छित हो जाते थे। एक बार जब श्रीकृष्ण द्वारकामें श्रीमती राधिकाका स्मरण करते हुए मूर्च्छित हो गये, तो सभी लोग चिन्तित हो गये और नारदजी, उद्धवजी, श्रीबलदेव प्रभु और अन्य लोग विचार करने लगे कि उनकी मूर्च्छा कैसे दूर हो? सभीने नारदजीसे कहा कि आप अपनी

वीणा बजाकर यशोदा मैया, गोपियों और अन्य व्रजवासियोंका गुणगान करें। किन्तु नारदजीने आपत्ति करते हुए कहा—"क्या आप जानते हैं कि जब श्रीकृष्णकी मूर्च्छा दूर होगी, तब क्या होगा? वे तुरन्त व्रजकी ओर प्रस्थान करेंगे और तब कोई भी उन्हें रोक नहीं पायेगा। वे सदाके लिए व्रजमें ही रह जायेंगे और फिर कभी भी लौटकर द्वारका नहीं आयेंगे। इसलिए आपको बहुत सोच-विचारकर कोई निर्णय लेना चाहिये।"

यह सुनकर सभी असमञ्जसकी स्थितिमें पड़ गये। बहुत सोच-विचार करनेपर निश्चय किया गया कि उद्धवजी पहले भी श्रीकृष्णका सन्देश लेकर व्रजमें गये थे, अतएव इस बार भी वे ही व्रजमें जायें। वे व्रजमें जाकर यशोदा मैया, नन्द महाराज और अन्य गोपों और गोपियोंको सन्देश दें कि श्रीकृष्ण शीघ्र ही वहाँ आ रहे हैं और उनके स्वागतकी तैयारी की जाये। तब कृष्णके वहाँ जानेपर उद्धवजी भी उनके साथ कु
श्रीकृष्णको वापस द्वारका लौटा लायें।

यह प्रस्ताव सुनकर उद्धवजी बहुत दुःखी हो गये। उन्होंने कहा "यदि मैं वृन्दावनमें जाकर यह कहता हूँ कि श्रीकृष्ण यहाँ आनेवाले हैं, तो कोई भी मेरी बातपर विश्वास नहीं करेगा। इसका कारण है कि बहुत वर्षों पहले भी मैंने उन व्रजवासियोंसे कहा था कि मैं जा रहा हूँ और अतिशीघ्र ही श्रीकृष्णको साथ लेकर आऊँगा। इसके बाद मैंने श्रीकृष्णसे कई बार व्रजमें जानेका आग्रह किया, परन्तु उन्होंने कोई-न-कोई बहाना बनाकर टाल दिया। व्रजवासी लोग मेरी बातका विश्वास नहीं करेंगे, अपितु कहेंगे कि यह झूठा फिर यहाँ आ गया।"

तब श्रीनारद मुनिने कहा—"ऐसी स्थितिमें तो फिर श्रीबलदेव प्रभु ही जाकर गोप-गोपियोंको सान्तावना दे सकते

है।" परन्तु श्रीबलदेव प्रभुने भी इसी प्रकार उत्तर दिया—"मैंने कृष्णको अनेकों बार व्रजमें जानेके लिए कहा, किन्तु वह सदैव यही कहता रहा कि 'हाँ, मैं जाऊँगा', परन्तु कभी गया नहीं। अन्तमें मैं अकेला ही वहाँपर गया और व्रजवासियोंको सान्तावना देनेके लिए वचन देकर आया कि द्वारका जाकर मैं कृष्णको लेकर ही लौटूँगा। मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह कठोर हृदय कृष्ण वहाँ क्यों नहीं जाना चाहता? इसका हृदय पहले बहुत कोमल था, परन्तु अब पाषाण जैसा कठोर हो गया है। इसलिए मेरे वहाँ जानेसे भी कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि व्रजवासी मेरी बातका विश्वास ही नहीं करेंगे, अतएव कृष्णको स्वयं ही वहाँपर जाना चाहिये।"

जब सभी ऐसा विचार-विमर्श कर रहे थे, उसी समय श्रीसुभद्राजी वहाँपर आ पहुँची और उन्होंने समस्त वार्त्तालाप सुनकर कहा—"आप लोग चिन्ता न करें, मैं वृन्दावन जाऊँगी। मैं यशोदा मैयासे मिलूँगी और उनकी गोदमें बैठकर उन्हें बतलाऊँगी 'भैया कृष्ण यहाँ आ रहे हैं। वे मेरे साथ ही आ रहे थे, परन्तु मार्गमें बहुत-से राजाओंने उन्हें घेर लिया और उनका अर्चन-पूजन करके बहुत-सी भेंट प्रदान करने लगे, इसलिए मैं पहले यहाँ पहुँच गयी। भैया भी बस आते ही होंगे।' मैं प्रत्येक गोपीके घरमें जाकर भैयाके आनेका समाचार दूँगी और उन्हें भैया कृष्णके स्वागतकी तैयारी करनेको कहूँगी। यह सुनकर उनका विरह दूर हो जायेगा। जब भैया वहाँ कु
कर लेंगे, तब मैं चतुराईसे उन्हें पुनः द्वारका ले आऊँगी। अतएव आप लोग शीघ्र ही मेरे लिए एक अच्छे रथका प्रबन्ध कीजिये और नारदजी आप अपनी वीणापर व्रजकी महिमाका गुणगान कीजिये। इससे भैया कृष्णकी मूर्च्छा भङ्ग हो जायेगी और तब वे मेरे पीछे-पीछे वृन्दावनकी ओर चलेंगे।"

सबने श्रीसुभद्राजीकी बातका समर्थन किया और उनके लिए एक सुन्दर रथकी व्यवस्था की गयी। जब श्रीसुभद्राजी जानेके लिए तैयार हुईं, उसी क्षण श्रीबलदेव प्रभुने कहा—"यदि सुभद्रा और कृष्ण जा रहे हैं, तो मुझे भी जाना चाहिये। मैं भी यशोदा मैया, नन्दबाबा तथा सभी सखाओं और गोपियोंसे भेंट करना चाहता हूँ, मैं यहाँ नहीं रुक सकता।"

श्रीबलदेव प्रभु, श्रीसुभद्रादेवी और श्रीकृष्णका व्रजकी ओर गमन

श्रीसुभद्राजीने कहा—"हाँ, हम सबको साथ ही चलना चाहिये। सबसे आगे बलदेव भैया जायेंगे और मैं उनके पीछे चलूँगी।" इसलिए श्रीबलदेव प्रभुके लिए दूसरा रथ मँगवाया गया और श्रीबलदेव प्रभुका रथ श्रीसुभद्राजीके रथके आगे रहा। जब वे प्रस्थान करनेवाले थे, तभी श्रीबलदेव प्रभुने श्रीकृष्णके सारथि दारुकको कहा—"रथ यहाँपर ले आओ और तैयार रहो। कृष्णकी मूर्च्छा दूर होते ही उन्हें रथमें बैठाकर जल्दीसे व्रजमें ले चलना।"

तब श्रीनारद मुनि वीणा बजाते हुए व्रजकी महिमाका मधुर स्वरसे गान करने लगे। जैसे ही नारदजीके मधुर स्वरने श्रीकृष्णके कानोंमें प्रवेश किया, उसी क्षण उनकी मूर्च्छा दूर हो गयी और वे विचार करने लगे—"प्रातःकालका समय है और मैं व्रजमें हूँ। मेरी प्यारी वंशी कहाँ गयी? अरे! मेरी प्यारी वंशी कहाँ गयी? अच्छा, मैं जानता हूँ कि गोपियाँ बहुत चतुर हैं और अवश्य ही मुझे छकाने (परेशान करने) के लिए उन्होंने मेरी वंशी चुरायी होगी, मैं भी आज उन्हें अच्छा पाठ पढ़ाऊँगा।"

भगवान् श्रीकृष्ण वंशीको ढूँढ़ते हुए कहने लगे—"ललिताने इसे चुराया होगा, अथवा नहीं तो फिर राधाने विशाखाकी सहायतासे इसे चुराया होगा।" तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अपनी

त्रिभङ्ग-ललित मुद्रामें, जैसे वे व्रजमें रहते थे, खड़े हो गये। द्वारकामें आज तक किसीने भी भगवान्‌के इस स्वरूपके दर्शन नहीं किये थे। उसी समय श्रीकृष्णने उद्धवजीको देखा और उनसे पूछा—"उद्धव तुम व्रजमें कैसे आये हो?" तब उन्होंने नारदजीको देखकर कहा—"नारदजी! आप भी वृन्दावनमें हैं।" तब श्रीनारदने उत्तर दिया—"भगवन्! आप वृन्दावनमें नहीं है, आप तो द्वारकामें हैं और ये यमुनाजी नहीं हैं, यह द्वारकापुरीका समुद्र है, कृपया स्मरण करें कि आप कहाँपर हैं?"

भगवान् श्रीकृष्ण व्रजके भावोंमें इतने डूबे हुए थे कि वे बिलकु

नारदजीके वचन सुनकर उन्हें स्मरण हुआ कि वे तो अभी द्वारकामें हैं। तदुपरान्त वे गोप-गोपियोंसे मिलनेके लिए वृन्दावनकी ओर दौड़नेके लिए उद्यत हो गये। तभी उद्धवजीने कहा—"प्रभो! आपका रथ तैयार है, आप इसपर आकर बैठिये। हम सभी जानते थे कि आप ऐसा ही करनेवाले हैं।"

श्रीकृष्ण अपने रथमें सवार होना चाहते थे, परन्तु वे श्रीमती राधाजीके प्रेममें इतना डूबे हुए थे कि वे ठीकसे चल भी नहीं पा रहे थे। बहुत-से लोग आगे-पीछे और दायें-बायेंसे उन्हें सहारा देते हुए उनके साथ चलने लगे। वे श्रीराधाके प्रेममें पागलसे हो रहे थे। किसी प्रकारसे उन्हें रथपर ले जाकर बैठाया गया और उनके रथपर बैठते ही सारथि दारुक रथको तीव्र गतिसे व्रजकी ओर ले चला। श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्राजी आगे थे और श्रीकृष्ण उनके पीछे चल रहे थे।

उस समय वृन्दावनमें राधाजी श्रीकृष्णका तीव्र विरह सहन न कर पानेके कारण मरणासन्न (मृत प्रायः) अवस्थामें थीं। सभी व्रजवासी यह सोचकर चिन्तित थे कि अब वे किसी

भी क्षण अपना शरीर त्याग देंगी। सभी अत्यधिक दुःखके सागरमें डूब रहे थे और सोच रहे थें कि श्रीराधाजीके प्राणोंकी कैसे रक्षा की जाये? ललिता और विशाखा उन्हें सचेत करनेका भरसक प्रयास कर रही थीं, परन्तु राधाजीकी मूर्च्छा दूर ही नहीं हो रही थी। उसी समय चन्द्रावली आदि दूसरी सखियाँ भी वहाँपर एकत्रित हो गयीं, वे सब भी बहुत दुःखी थीं।

यद्यपि व्रजमें चार प्रकारकी गोपियाँ हैं—स्वपक्षा (राधाजीके पक्षवाली), विपक्षा (राधाजीके विपक्षवाली), तटस्थापक्षा (राधा पक्षीय और विपक्षकी सखियोंमें समान भाव वाली) और सुहृतपक्षा (राधाजीकी मित्रवत् सखियोंका समूह)। परन्तु श्रीकृष्णके व्रजमें लीलावशतः अन्तर्धान होनेपर अथवा उनके मथुरा या द्वारका जानेके पश्चात् सखियोंके पृथक् समूह नहीं रह जाते। जब सभी गोपियोंके हृदयमें ही विरहका भाव जाग्रत हो जाता है, उस समय सभी गोपियाँ श्रीकृष्णके विरहमें एक ही पक्षवाली हो जाती हैं और एक दूसरेकी सहायता करती हैं। विपक्षा चन्द्रावली, भद्रा आदि सखियाँ भी आकर श्रीराधाजीको सन्तावना देती हैं, क्योंकि श्रीराधाजीका विरहभाव सबसे तीव्र होता है। वे सब श्रीराधाजीके प्रति सहानुभूतिका भाव रखती हैं और उन्हें सन्तावना देती हैं, क्योंकि उन सबका विरहभाव राधाजीकी तुलनामें कु होता है। यद्यपि चन्द्रावलीका विरहभाव भी बहुत अधिक होता है, तथापि वे श्रीराधाजीको सन्तावना देती हुई कहती हैं—"हे राधे! तुम रोओ मत, कृष्ण शीघ्र ही आयेंगे।"

चन्द्रावलीकी बात सुनकर श्रीमती राधिकाने ललितासे कहा—"यदि श्रीकृष्ण द्वारकासे न लौटें तब निश्चित रूपमें मैं कदापि उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती और वे भी मुझे कभी भी प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिए अत्यन्त कष्टसे अब इस शरीरको बचानेकी क्या आवश्यकता है? मेरी मृत्युके

पश्चात् तुम स्नेहसे इसे बचानेका प्रयास न करना। यह पञ्चत्व लाभकर स्पष्ट रूपसे आकाशादि अपने-अपने भूतोंमें मिल जाये। मैं अपने मस्तकको पृथ्वीपर टेककर प्रणामपूर्वक विधातासे यही एक प्रार्थना करना चाहती हूँ कि श्रीकृष्णकी विहार-दीर्घिकामें इस देहका जल, उनके दर्पणमें मेरे शरीरकी अग्नि, उनके आङ्गनके आकाशमें मेरे अङ्गोंका आकाश तथा उनके गमनागमन पथमें पृथ्वी और वायु उनके तालवृन्त (तालके बने हुए पङ्खे) में प्रवेश करे।" इस प्रकार विलाप करते-करते वे पुनः मूर्च्छित हो गयीं।

उसी क्षण तीनों रथ व्रजमें आ पहुँचे, श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्राजीके रथ आगे थे और श्रीकृष्णका रथ उनके रथोंके पीछे था। जैसे ही श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे और उन्होंने सुना कि राधाजी मरणासन्न अवस्थामें हैं और वे किसी भी क्षण प्राण त्याग सकती हैं, तो वे तुरन्त ही राधाजीकी ओर दौड़ पड़े। श्रीराधाजीके समीप पहुँचनेपर श्रीकृष्ण उन्हें देखकर व्याकु

राधाजीके प्रेममें अधिक डूबने लगे वैसे-वैसे उनके हाथ और शरीरका नीचेका भाग द्रवित होने लगा। उनका मुखमण्डल विस्तृत होने लगा और उसमें उनकी बड़ी-बड़ी गोल आँखें दिखने लगीं। श्रीसुभद्राजी और श्रीबलदेव प्रभुने भी उस स्थानपर पहुँचकर जब यह दृश्य देखा, तो वे भी अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं रख सके और उन दोनोंके शरीर भी श्रीकृष्णके शरीरके समान द्रवित हो गये।

उसी समय ललिताजीने राधाजीके एक कानमें कहा—"हे राधे! कृष्ण तुमसे मिलनेके लिए आ गये हैं, इसलिए प्राण मत त्यागो।" दूसरे कानमें विशाखाजीने कहा—"कृष्ण तुमसे मिलने आये हैं।" यह सुनकर धीरे-धीरे श्रीराधाजीकी चेतना लौट आयी और उन्होंने अपने नेत्रोंको खोलकर सोचा—"अहो! मेरे प्राण प्रियतम श्यामसुन्दर आ गये हैं।" यह कहकर वे

श्रीकृष्णके प्रेममें डूब गयीं। राधाजीकी ऐसी उन्मादकी दशाको देखकर श्रीकृष्णका प्रेम भी अपनी चरमसीमापर पहुँच गया। वे शरीरकी सुधबुध भूल गये और पृथ्वीपर लोट-पोट होने लगे।

राधिकाजीने विशाखासे कहा—“हे सखी! कृष्णकी सहायता करो, नहीं तो वे प्राण त्याग देंगे।” विशाखाने श्रीकृष्णके कानमें ‘राधे, राधे, राधे’ कहा। विशाखाके मुखसे इन अमृतमय शब्दोंको सुनते ही श्रीकृष्णकी बाह्य चेतना पुनः लौट आयी। उन्होंने अपने नेत्र खोल दिये और वे प्रसन्न हो गये। धीरे-धीरे उनका शरीर पहले जैसा हो गया और उन दोनोंका मिलन देखकर सभी व्रजवासी अत्यधिक प्रसन्न हो गये।

तभी श्रीनारदजी भी वहाँ पहुँचे और उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—“प्रभो! मैं चाहता हूँ कि प्रेमके उन्मादमें द्रवीभूत तीन रूप (श्रीकृष्ण, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्रा) जो आपने अभी यहाँ प्रकट किये थे, उन्हें आप इस जगत्‌में नित्य प्रकाशित करें। इन तीनों रूपोंमें आपका श्रीविग्रह इस जगत्‌में कहीं स्थापित हों, जिनके दर्शन प्राप्तकर प्रत्येक जीव आपके प्रेममय स्वरूपके विषयमें जान सके।” श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर कहा—“तथास्तु, तथास्तु, एवं भवतु! ऐसा ही होगा। मैं सदैव अपने इन तीनों स्वरूपोंमें द्वारकाके ही समान नीलाचलमें—श्रीजगन्नाथपुरीमें नित्य विराजित रहूँगा और सभी वहाँ आकर मेरे इस स्वरूपका दर्शन कर सकेंगे।”

यह सुनकर श्रीनारदजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वीणा बजाकर श्रीकृष्णका कीर्त्तन करते हुए नृत्य करने लगे। कल्प भेदके अनुसार ही इन लीलाओंमें भेद भी दिखलायी देता है।

पञ्चम अध्याय

भगवान् श्रीजगन्नाथके भक्त-वात्सल्यको प्रदर्शित करने-वाला महाराज पुरुषोत्तम जानाका इतिहास और श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा राजा इन्द्रद्युम्नकी उपेक्षा

महाप्रभुके श्रीजगन्नाथपुरीमें आगमनसे कु
महाराज प्रतापरुद्रके पिता पुरुषोत्तम जाना उड़ीसामें राज्य करते थे। अपनी युवावस्थामें वे अत्यन्त बलवान और सुन्दर थे और उस समय दक्षिण भारत स्थित विद्यानगरकी राजकु
विद्यानगरके राजाने पुरुषोत्तम जानाके पास सन्देश भिजवाया कि वे उनसे भेंट करने आयेंगे, परन्तु उन्होंने अपने आनेकी कोई निश्चित तिथि नहीं बतलायी। पुरुषोत्तम जानाके रूप, गुण, धन-सम्पदाको स्वयं निरीक्षण करनेके लिए वे अपने परिवार सहित अचानक पुरी आ पहुँचे। दैवयोगसे उस समय जगन्नाथदेवकी रथ-यात्राका प्रथम दिवस था और राजा पुरुषोत्तम जाना साधारण वस्त्र पहनकर झाड़ूदारकी भाँति श्रीजगन्नाथदेवके रथके सामने झाड़ू लगा रहे थे। यद्यपि विद्यानगरके राजा पुरुषोत्तम जानाके यौवन और सौन्दर्यसे बड़े प्रभावित हुए, तथापि उनके मनमें पुरुषोत्तम जानाके प्रति कोई आदर भाव नहीं आया। उन्होंने सोचा—"मैं तो यह विचार करके यहाँ आया था कि पुरुषोत्तम जाना अत्यन्त धनवान और विद्वान होगा, परन्तु यह तो झाड़ूदारकी भाँति झाड़ू लगा रहा है। मैं इस झाड़ूदारके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कदापि नहीं कर सकता।" इस प्रकार वे पुरुषोत्तम जानासे मिले बिना ही अपने परिवार सहित अपने राज्यको

लौट गये और उन्होंने अपनी पुत्रीका विवाह पुरुषोत्तम जानासे न करनेका निश्चय कर लिया।

राजा पुरुषोत्तम जानाकी युद्धमें पराजय

बहुत दिन बीत जानेपर भी जब विद्यानगरके राजाका कोई सन्देश नहीं आया, तो पुरुषोत्तम जानाने अपने मन्त्रीसे इस विषयमें परामर्श किया। मन्त्रीने सन्देशवाहक भेजकर इस विषयमें पूछताछ की, तो उन्हें सारी बातका पता चला। मन्त्रीने राजा पुरुषोत्तम जानासे कहा—"महाराज! विद्यानगरके राजाने आपको रथ-यात्राके अवसरपर भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके रथके सामने झाड़ू लगाते हुए देखकर आपको एक साधारण झाड़ूदार ही समझा और इसलिए उन्होंने कहा है कि वह अपनी पुत्रीका विवाह एक झाड़ूदारसे नहीं करना चाहते।" यह सुनकर राजा पुरुषोत्तम जानाको बहुत क्रोध आया और उन्होंने मन्त्रीसे कहा कि वह तुरन्त विद्यानगरपर आक्रमणकी तैयारी करे। पुरुषोत्तम जानाने मन-ही-मन विद्यानगरके राजासे कहा—"अभी तुम श्रीजगन्नाथदेवकी महिमासे अवगत नहीं हो, इसलिए ही तुम्हारी ऐसी कु
सेना लेकर विद्यानगरपर आक्रमण कर दिया।

विद्यानगरके राजा गणेशजीके उपासक थे और गणेशजीकी उनपर विशेष कृपा थी। इस युद्धमें गणेशजीने स्वयं विद्यानगरके राजाकी ओरसे युद्ध किया और पुरुषोत्तम जानाको युद्धमें पराजयका मुख देखना पड़ा। पुरुषोत्तम जाना रोते हुए भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके मन्दिरमें गये और बोले—"हे प्रभो! मैं तो आपका सेवक हूँ। जब मैं आपके लिए ही झाड़ू लगा रहा था, तो विद्यानगर नरेशने मुझे झाड़ूदार समझकर मेरा अपमान किया। मेरा तो पूर्ण विश्वास था कि आप प्रत्येक परिस्थितिमें मेरी सहायता करेंगे, परन्तु आपने युद्धमें मेरा साथ नहीं दिया। विद्यानगरका राजा गणेशजीका

भक्त है और उन्होंने उसकी सहायता की जिसके कारण वह विजयी हुआ। मैंने आपको अपनी रक्षाके लिए पुकारा, परन्तु आप नहीं आये। अब संसारमें लोग यही सोचेंगे कि श्रीजगन्नाथजीमें अपने भक्तोंकी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं हैं और उनके भक्तोंमें भी कोई शक्ति नहीं है। इस जगत्‌में इससे अधिक लज्जाकी क्या बात हो सकती है। इसलिए मैं अभीसे अन्न-जलका त्यागकर आपके मन्दिरमें आपके समक्ष ही अपने प्राण त्याग दूँगा।"

भगवान् श्रीजगन्नाथके द्वारा राजाकी सहायता

उसी रात्रि भगवान् श्रीजगन्नाथदेवने पुरुषोत्तम जानाको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—"तुम मुझे बतलाये बिना ही युद्धके लिए चले गये थे, इसलिए मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर पाया। अब तुम पुनः युद्धकी तैयारी करो और इस बार मैं अवश्य ही तुम्हारी सहायता करूँगा। बलदेव प्रभु और मैं—दोनों ही युद्धमें उपस्थित होंगे और इसका तुम्हें साक्षात् अनुभव होगा। विद्यानगरके राजा और उनकी ओरसे युद्ध कर रहे गणेशजी तथा अन्य योद्धाओंको भी तुम परास्त कर दोगे। किसी प्रकारका भय मत करो और कोई चिन्ता भी मत करो।" यह सुनकर पुरुषोत्तम जाना अति प्रसन्न हुए और पुनः विद्यानगरपर आक्रमणकी तैयारी करने लगे। अगले ही दिन उन्होंने अपने सैनिकोंको एकत्रित किया और शीघ्र ही विद्यानगरपर चढ़ाई कर दी।

इधर श्रीजगन्नाथदेव और श्रीबलदेव प्रभु हृष्ट-पुष्ट घोड़ोंपर सवार होकर पुरुषोत्तम जानाकी सेनासे कु

लगे। श्रीजगन्नाथजीका घोड़ा श्यामवर्णका था और श्रीबलदेव प्रभु गौरवर्णके घोड़ेपर सवार थे। उन दोनोंका परम मनोहर रूप अत्यन्त आकर्षक था तथा उनकी सुगठित देह उनके पराक्रमका परिचय दे रही थी। ग्रीष्म ऋतुका समय था और

उस दिन भीषण गर्मी पड़ रही थी। तभी मार्गमें उन्हें सिरपर छाछकी मटकी ले जाती हुई एक वृद्धा ग्वालिन दिखायी दी। उन्होंने उससे पूछा—“मैया क्या तुम हमें कु
सकती हो? हमारा कण्ठ प्याससे सूखा जा रहा है।”

उस ग्वालिनीने उनसे पूछा—“क्या तुम्हारे पास इसका मूल्य चुकानेके लिए कु
पिला सकती हूँ, अन्यथा नहीं।”

श्रीजगन्नाथदेवने कहा—“हम राजाके सैनिक हैं और हम युद्धके लिए जा रहे हैं। इस समय हमारे पास कोई धन नहीं है, परन्तु हमारे महाराज सेनाके साथ पीछे आ रहे हैं और वे तुम्हें इसका उचित मूल्य चुका देंगे।”

ग्वालिनीने कहा—“मैं यदि महाराजसे छाछका मूल्य माँगूगी, तो वे कैसे जानेंगे कि उनके सैनिकोंने ही छाछ ली थी और उन्हें उसका मूल्य चुकाना है?”

श्रीजगन्नाथदेवने कहा—“आप उनसे कहना कि आपके एक श्यामवर्णके और एक गौरवर्णके सैनिक अस्त्र-शस्त्र लेकर घोड़ोंपर सवार होकर यहाँसे गये हैं और उन्होंने ही छाछ पी है। मैं तुम्हें दो अँगूठियाँ भी दे रहा हूँ। तुम ये अँगूठियाँ महाराजको दिखलाकर कहना कि इन अँगूठिओंके स्वामी आपसे आगे युद्धके लिए चले गये हैं और उन्होंने मुझसे छाछ ली थी, जिसका मूल्य आप कृपाकर चुका दें।”

तब श्रीजगन्नाथजीने उस ग्वालिनीको दो अँगूठियाँ दे दीं और उससे छाछका सम्पूर्ण घड़ा लेकर उन्होंने श्रीबलदेव सहित अपनी प्यास बुझायी। इसके पश्चात् तृप्त होकर वे दोनों आगे चल दिये। कु
अपने सैनिकोंके साथ वहाँ पहुँचे, तो उस ग्वालिनीने राजासे कहा—“महाराज! आपके दो सैनिक कु
गये हैं और उन्होंने मुझसे छाछ ली थी और यह कहा था कि उसका मूल्य पीछे आ रहे महाराज ही देंगे।”

राजा पुरुषोत्तम जानाने कहा—"मेरा तो कोई भी सैनिक मुझसे आगे नहीं गया है।"

तब उस ग्वालिनीने राजाको वे दो अँगूठियाँ दी और कहा—"इन अँगूठिओंके स्वामियोंने मुझसे छाछ ली थी।"

राजाने देखा कि वे स्वर्णकी अँगूठियाँ हैं जिनपर जगन्नाथ सिंह और बलदेव सिंह, ये दो नाम अङ्कित थे। इन्हें देखकर राजा पुरुषोत्तम जाना अति प्रसन्न हो गये, क्योंकि ये सोनेकी दोनों अँगूठियाँ स्वयं उन्होंने स्वर्णकारसे बनवाकर श्रीजगन्नाथदेव और श्रीबलदेव प्रभुको अर्पित की थीं। राजा सोचने लगे—"इस बार मैं अवश्य ही विजयी होऊँगा, क्योंकि स्वयं श्रीजगन्नाथदेव और श्रीबलदेव प्रभु मेरी सहायताके लिए आगे चल रहे हैं।" तब उन्होंने उस ग्वालिनीको विशाल भूमिखण्ड देकर कहा—"तुम परम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हारे हाथोंसे बनी छाछको स्वयं भगवान् जगन्नाथ तथा बलभद्रने पान किया है। आस-पास जितनी भूमि दिखायी दे रही है, वह भूमि आजसे तुम्हारी है, तुम इस भूमिका जो करना चाहो, कर सकती हो। इसके द्वारा तुम्हारी अनेक पीढ़ियोंका भरण-पोषण हो जायेगा।" इतना कहकर महाराज अपनी सेना सहित आगे बढ़ गये। उस वृद्धा स्त्रीके वंशज आज तक उसी भूमिपर निवास कर रहे हैं।

राजा पुरुषोत्तम जानाने विद्यानगरपर आक्रमणकर शत्रुकी सेनाको परास्तकर दिया। गणेशजी विद्यानगर नरेशकी ओरसे युद्ध कर रहे थे। श्रीजगन्नाथदेव और श्रीबलदेव प्रभुने उन्हें परास्तकर बन्दी बना लिया। यद्यपि गणेशजी इस बातसे भलीभाँति परिचित थे कि श्रीकृष्ण ही परम भगवान् हैं, तथापि उन्होंने उनके शत्रुका साथ दिया, इसलिए श्रीकृष्ण और श्रीबलदेव प्रभुने उन्हें 'भण्ड (ठग) गणेश' नाम दिया। राजा पुरुषोत्तम जानाने विद्यानगर नरेश, उनके मन्त्रियों और राजकु

स्वर्ण-सिंहासन और भण्ड-गणेशजीकी प्रतिमा भी ले ली। नवयुवक ब्राह्मणके साक्षी बनकर वृन्दावनसे आये भगवान् 'साक्षी-गोपाल' जो कि विद्यानगरमें थे, पुरुषोत्तम जानाने उन्हें भी वहाँसे लाकर कटकमें स्थापित किया। वे अपने साथ विद्यानगरसे श्रीराधाकान्तके अति सुन्दर और विशाल श्रीविग्रहको भी लाये जो आज भी श्रीजगन्नाथ मन्दिरके निकट स्थित श्रीराधाकान्त मठ[१] में विराजमान हैं।

पुरुषोत्तम जानाने विद्यानगर नरेशको मुक्त करते हुए कहा—"मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूँगा, किन्तु तुम्हारी पुत्रीको अपने पास रखूँगा।" वे राजकु

आये। पुरी पहुँचकर राजा पुरुषोत्तम जानाने निश्चय किया कि वे उससे विवाह नहीं करेंगे, अपितु अपने अपमानका प्रतिशोध लेनेके लिए उसका विवाह एक झाड़ूदारसे करवा देंगे। यह सुनकर वह राजकु

करने लगी।

राजकु

जानाके दयालु मन्त्रीने उसे सान्त्वना प्रदान की और राजासे बोले—"हे राजन्! आप कृपया इस कार्यमें शीघ्रता न करें। थोड़े समयमें भलीभाँति ढूँढ़कर हम किसी बहुत ही दीन-हीन और सम्पूर्ण रूपसे निर्धन किसी झाड़ूदारसे इसका विवाह करा देंगे।" राजाने मन्त्रीकी बात मान ली तथा उन्हींपर ही झाड़ूदारको ढूँढ़नेका भार सौंप दिया। मन्त्रीने उस राजकु

कु

पास रखा तथा जब अगले वर्ष रथ-यात्राके समय राजा पुरुषोत्तम जाना भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके रथके सामने झाड़ू लगा रहे थे, उसी क्षण मन्त्रीके परामर्श अनुसार राजकु

सभीके सामने राजाके गलेमें एक माला अर्पण की तथा

---

[१] वह स्थान जहाँपर बादमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी जगन्नाथपुरी रहते समय वास किया था। आजकल यह स्थान गम्भीराके नामसे भी प्रसिद्ध है।

कहा—"मैं इसी झाड़ूदारसे विवाह करूँगी।" मन्त्रीने भी राजकु
हाँ, यह तो अति सुन्दर प्रस्ताव है। महाराज तो दीन-हीन झाड़ूदार ही हैं, राजा होकर भी झाड़ू लगा रहे हैं तथा साथ-ही-साथ यह सम्पूर्ण रूपसे निर्धन भी है, क्योंकि इनका धन, जन, देह, मन तथा सर्वस्व भगवान् जगन्नाथजीका ही है। इनका अपना तो कु
दीन-हीन झाड़ूदार हमें कहाँ मिलेगा। अतः हे राजकु
ऐसे व्यक्तिसे विवाह करके आप झाड़ूदारकी पत्नी बन गयी तथा मैंने भी अपनी जिम्मेदारी पूरी कर दी।" तभी राजकु
पिघल गया। कु
विवाह हो गया और उन्हें अत्यन्त सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हुई। वही राजकु
महाप्रभुके पार्षद भी हुए। परम करुणामय भगवान् श्रीजगन्नाथदेव निश्चित ही पतित-पावन हैं, शरणागतोंके रक्षक हैं और भक्त-वत्सल हैं।

श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा राजा प्रतापरुद्रकी उपेक्षा

राजा प्रतापरुद्र भी भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके अनन्य भक्त थे और रथ-यात्राके समय वे भी स्वयं झाड़ू लेकर मार्गका मार्जन करते थे। श्रीमन् महाप्रभु उनकी ऐसी सेवा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। राजा प्रतापरुद्र श्रीमन् महाप्रभुसे भेंट करनेको बहुत उत्सुक थे, परन्तु उनके मिलनमें एक बहुत बड़ी बाधा थी और वह थी प्रतापरुद्रका राजा होना और श्रीमन् महाप्रभुका संन्यासी होना।

संन्यासीके लिए स्त्री और विषयी व्यक्तियोंका सङ्ग शास्त्रमें निषेध किया गया है और श्रीमन् महाप्रभु अपने संन्यास धर्मका बड़ी कठोरतासे पालन करते थे। संन्यास

लेनेके उपरान्त उन्होंने कभी भी किसी स्त्रीका स्पर्श नहीं किया, चाहे वह छोटी-सी बालिका ही क्यों न हो। श्रीमन् महाप्रभुने शिक्षा दी है कि नारीकी काठकी मूर्त्ति मुनिके मनको भी विचलित कर सकती है। विश्वामित्र और नारद मुनि अत्यन्त त्यागी और तत्वज्ञ थे, परन्तु जगत्को शिक्षा देनेके लिए उन्होंने ऐसी लीलाएँ करके दिखलायी जिनसे शिक्षा मिलती है कि यदि साधक सावधान नहीं रहेगा तो उसके पतनकी सम्भावना सदा बनी रहेगी। स्त्रीको पुरुषका और पुरुषको स्त्रीका सङ्ग करते समय अत्यन्त सावधान रहना चाहिये, क्योंकि स्त्री और पुरुष एक-दूसरेके लिए कामदेवके समान हैं। परस्पर एक-दूसरेके निकट आनेपर वे अपने हृदय और इन्द्रियोंपर नियन्त्रण नहीं रख पाते। इसलिए शास्त्र सावधान करते हैं कि व्यक्तिको अपनी माता-बहन-पुत्रीके साथ भी कभी एकान्तमें एक आसनपर साथ नहीं बैठना चाहिये।

साधारण रूपसे राजा उसे कहा जाता है, जिसके पास अपार धन-सम्पत्ति हो और जो सांसारिक भोग-विलासकी समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न हो। साधकके लिए शास्त्र ऐसे विषयी व्यक्तिकी तुलना सर्पसे करते हैं। एक विषैले सर्पका विषदाँत निकाल लिये जानेपर भी वह सर्प ही रहता है तथा किसीके निकट आनेपर वह अवश्य ही फु
उसपर प्रहार करेगा। इसलिए यद्यपि राजा प्रतापरुद्र उत्तम भक्त थे, तथापि श्रीमन् महाप्रभुने राजाको स्वयंसे भेंट करनेकी अनुमति नहीं दी। इतना ही नहीं, जब श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीराय रामानन्द और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमन् महाप्रभुसे राजाको दर्शन देनेका आग्रह किया तो वे बोले—"यदि आप लोग मुझपर इस प्रकारका दबाव डालेंगे, तो मैं पुरी छोड़कर अलालनाथ अथवा किसी अन्य स्थानपर

चला जाऊँगा। मैं यहाँ नहीं रहूँगा, आप लोग ही उनके साथ रहें।"

जब राजा प्रतापरुद्रने सुना कि श्रीमन् महाप्रभु उन्हें दर्शन नहीं देंगे, तो वे बहुत निराश हो गये। उन्होंने कहा—"यदि श्रीचैतन्य महाप्रभुने यह प्रतिज्ञा की है कि वे सम्पूर्ण जगत्को (मायासे) मुक्त करेंगे और सभीको कृष्णप्रेम प्रदान करेंगे। केवल मुझे ही वञ्चित रखेंगे। तब मेरी भी प्रतिज्ञा है कि यदि श्रीमन् महाप्रभुने मुझे दर्शन नहीं दिये तो मैं अपना राज्य, अपनी पत्नी-सन्तान और यहाँ तक कि अपने प्राणोंको भी त्याग दूँगा।"

सार्वभौम भट्टाचार्यने राजाको सान्त्वना देते हुए कहा—"महाराज! धैर्य धारण करें, जल्दबाजीमें कोई निर्णय न लें। उचित समय आनेपर आप अवश्य ही उनके दर्शन प्राप्तकर उनकी सेवा कर सकेंगे। श्रीमन् महाप्रभु आपसे बहुत प्रसन्न हैं, क्योंकि आप सरल हृदयके व्यक्ति हैं तथा रथ-यात्राके समय आपने श्रीजगन्नाथदेवकी झाड़ू लगाकर सेवा की है। आपके पुत्रके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका विशेष स्नेह है और इसलिए उन्होंने आपके पुत्रका आलिङ्गनकर उससे प्रतिदिन भेंट करनेके लिए कहा है। एक प्रकारसे आपने अपने पुत्रके माध्यमसे श्रीमन् महाप्रभुके दर्शन और उनकी कृपा तो प्राप्त कर ही ली है। यदि आप उनका साक्षात् दर्शन चाहते हैं, तो उसका एक उपाय है। जब रथ-यात्राके समय श्रीमन् महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके रथके सम्मुख प्रेममें उन्मत्त होकर नृत्य करनेके पश्चात् गम्भीर भावमें भावाविष्ट होकर श्रीजगन्नाथ-वल्लभ उद्यानमें विश्राम करेंगे। उसी समय आप साधारण वस्त्रोंमें एक भिक्षुककी भाँति उनके निकट जाना। वहाँ जाकर आप गोपी-गीत और श्रीमद्भागवतके अन्य श्लोकोंका, जिनमें श्रीकृष्णके साथ गोपियोंका प्रसङ्ग है, गान

करना। इस प्रकार आप निश्चित ही श्रीमन् महाप्रभुके चरणकमलोंके कृपापात्र बन जायेंगे।”

षष्ठ अध्याय

गुण्डिचा मन्दिर मार्जन

भगवान् श्रीजगन्नाथकी रथ-यात्रासे एक दिन पूर्व गुण्डिचा मन्दिरका मार्जन किया जाता है, जिससे वह स्थान भगवान्‌के विश्राम करने योग्य हो जाये।

गुण्डिचा मन्दिरके मार्जनका तात्पर्य

जगत्‌की सृष्टि और पालन करनेवाले भगवान् एक ही हैं। वे ही हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी अथवा अन्यान्य धर्मोंके भगवान् हैं तथा वे ही श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीनृसिंह, श्रीजगन्नाथ, अल्लाह, ईसा-मसीह, जेहोवाह आदि अनेक नामोंसे जाने जाते हैं। जैसे इस जगत्‌में एक ही सूर्य और एक ही चन्द्रमा हैं, वैसे ही भगवान् भी एक ही हैं अधिक नहीं। अन्यथा उनमें भी एक दूसरेके राज्यको लेकर परस्पर विवाद होता।

भगवान् भक्तके भावोंके अनुरूप अपने स्वरूपको उसके सामने प्रकट करते हैं। इसे चन्द्रमाके उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। चन्द्रमा अमावस्यासे पूर्णिमा तक पन्द्रह पृथक्-पृथक् रूपोंमें दिखलायी देता है और उसके अनुरूप भिन्न-भिन्न नामोंसे जाना जाता है, परन्तु प्रत्येक अवस्थामें चन्द्रमा तो एक ही है। इसी प्रकार भगवान् भी एक ही हैं। जब वे अपना वैभव और माधुर्य सम्पूर्ण रूपमें प्रकाशित करते हैं, तब वे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके रूपमें जाने जाते हैं। वे देश-काल-पात्रके अनुसार अपने वैभवके अंशको भी प्रकाशित करते हैं, तब उनके नाम भी अलग-अलग होते

हैं। श्रीकृष्ण एक ही हैं, परन्तु उनके असंख्य अवतार हैं और सभी अवतार श्रीकृष्णसे अभिन्न हैं।

हम सभी जीव भगवान्‌के विभान्नांश हैं। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

ममैवांशो जीवलोके जीव भूत सनातनः।

(गीता १५/७)

जीव स्वभावतः श्रीकृष्णका नित्यदास और उनकी तटस्था-शक्तिका परिचय है। जीव भगवान्‌का नित्य दास है, वह कभी भी भगवान् नहीं बन सकता। जीवका भगवान्‌से युगपत् भेद तथा अभेद—दोनों है। जैसे सूर्यकी किरणें और ताप, सूर्यसे युगपत् भिन्न और अभिन्न हैं, जैसे अग्निकी दाहिका शक्ति अग्निसे भिन्न और अभिन्न है, वैसे ही जीव भगवान्‌से एक ही साथ भिन्न और अभिन्न हैं।

जीव मायाके वशीभूत होने योग्य है, किन्तु भगवान् मायाके नियन्ता हैं, इस स्थलपर जीव और भगवान्‌में नित्य भेद है। जीव स्वरूपतः चित्-वस्तु है और भगवान् भी स्वरूपतः चित्-वस्तु हैं अतएव इसी आंशिक दृष्टिकोणसे भगवान् तथा जीव—इन दोनोंमें नित्य अभेद है। ऐसा विचार करनेसे यह सिद्धान्त होता है कि जीवका भगवत्-तत्त्वसे युगपत् भेद और अभेद दोनों है, इसलिए जीव भगवान्‌का भेदाभेद-प्रकाश है। इसे अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्त कहा जाता है तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुने इसकी विस्तारसे व्याख्या की है।

सभी जीव स्वरूपतः भगवान्‌के नित्य दास हैं इसे कोई माने अथवा न माने, किन्तु यह परम सत्य है। श्रीकृष्णकी दासता (सेवा) ही जीवका नित्य धर्म है। उसे भूलकर जीव मायाके वशीभूत होकर श्रीकृष्णसे बहिर्मुख हो जाता है और इस जगत्‌में जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ जाता है।

जीवके कल्याणके लिए ही कभी भगवान् स्वयं इस जगत्‌में अवतरित होते हैं और कभी अपने शुद्ध ज्ञानका

प्रचार करनेके लिए वे अपने निजजनोंको जगत्‌में भेजते हैं।

बद्धजीवके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, मात्सर्य आदि अनेक विकार होनेके कारण वह भगवान्‌के शुद्ध चिन्मय स्वरूपको अनुभव नहीं कर पाता है। जब तक जीवके हृदयमें ये सब अनर्थ रहते हैं, तब तक भगवान् उसके हृदयमें प्रकट नहीं होते। अशुद्ध चित्तमें केवल अपने सुखसे सम्बन्धित भोग वासनाएँ ही रहती हैं और श्रीकृष्ण सेवाकी वृत्तिका अभाव होता है। साधारणतः श्रीकृष्णसेवाकी तुलना सामान्य सांसारिक व्यक्तियोंकी सेवासे की जाती है। ऐसी अवस्थामें जीव इस बातसे सर्वथा अनजान होता है कि श्रीकृष्णकी सेवामें अपार आनन्द है। यह आनन्द जगत्‌में अपने पति, पत्नी, पुत्र, परिवारवालोंकी सेवासे प्राप्त आनन्दसे कोटि-गुणा अधिक है। श्रीकृष्णके चिन्मय धाममें प्रेमका अथाह सागर है। उस प्रेमको अपने हृदयमें जाग्रत करनेके लिए हृदयको अनर्थोंसे मुक्तकर शुद्ध करना पड़ता है। गुण्डिचा मन्दिर मार्जन साधकके हृदय-मार्जनका ही प्रतीक है।

श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा गुण्डिचा मन्दिर मार्जन

श्रीमन् महाप्रभुके पुरी पहुँचनेसे पूर्व वहाँके राजाके सेवक ही गुण्डिचा मन्दिरकी सफाई करते थे, परन्तु उनकी रुचि तो केवल अपना वेतन पानेमें ही होती थी और इस कारण वे अपना कार्य कु

होनेसे कोई भी भगवान् श्रीजगन्नाथको प्रसन्न नहीं कर सकता। अतएव श्रीजगन्नाथपुरीमें अपनी उपस्थितिके समय श्रीचैतन्य महाप्रभुने राजाको उनके गुरु काशीमिश्रके द्वारा सन्देश भिजवाया—"मैं स्वयं अपने परिकरोंके साथ गुण्डिचा मन्दिर और उसके आस-पासके स्थानोंकी सफाईकी अनुमति चाहता हूँ। इस कार्यके लिए हमें आपके सेवकोंकी आवश्यकता

नहीं है, आप केवल कु ू और घड़ोंकी व्यवस्था कर दें।"

यह सुनकर यद्यपि राजाको पहले तो बहुत विस्मय हुआ किन्तु जब उन्होंने काशी मिश्रके मुखसे श्रीमन् महाप्रभुके हृदगत भावोंको सुना तो उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने काशीमिश्रसे कहा—"यह बड़े हर्षका विषय है कि स्वयं श्रीमन् महाप्रभु अपने भक्तों सहित गुण्डिचा मन्दिरका मार्जन करके जगत्-वासियोंको शिक्षा प्रदान करेंगे। अतः उन्हें जिस किसी भी वस्तुकी आवश्यकता हो, आप उन्हें निःसंकोच प्रदान कीजिये।"

अगले दिन प्रातःकाल गुण्डिचा मन्दिर मार्जनके उद्देश्यसे बड़ी संख्यामें भक्त एकत्रित हुए। भक्तोंने श्रीमन् महाप्रभुको पुष्प मालाएँ और चन्दन भेंट किया और सभी उन्हें प्रणाम करना चाहते थे, परन्तु अत्यन्त विनम्रताके साथ श्रीमन् महाप्रभुने सभीको प्रणाम किया और उन सबके ललाटपर चन्दनका लेप किया। श्रीमन् महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंको स्पर्श किया। श्रीमन् महाप्रभुमें इस प्रकारका कोई अभिमान नहीं था कि 'मैं गुरु हूँ', सभीको मेरा सम्मान करना चाहिये और मुझे किसीका आदर करनेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीमन् महाप्रभुके साथ चलनेवाले सभी भक्त कीर्त्तन करते हुए एक-दूसरेके चरण स्पर्श कर रहे थे। श्रीमन् महाप्रभुने सभीके हाथोंमें एक-एक झाड़ू पकड़ा दिया और सभी भक्त श्रीजगन्नाथ मन्दिरसे गुण्डिचा मन्दिरकी ओर सङ्कीर्त्तन करते हुए पहुँचे।

गुण्डिचा मन्दिर पहुँचकर सर्वप्रथम श्रीमन् महाप्रभुने झाड़ूसे मन्दिरका मार्जन प्रारम्भ किया। उन्होंने मन्दिरमें ऊपर-नीचे सभी स्थानोंको झाड़ूसे साफ किया। उनके चारों ओर सैंकड़ों भक्त झाड़ू लेकर मन्दिरका मार्जन करने लगे।

यद्यपि श्रीमन् महाप्रभु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, परन्तु वे स्वयं मन्दिरको साफ-सुथरा कर रहे थे।

सभीको शिक्षा देनेके लिए श्रीमन् महाप्रभुने अपने परिकरोंसे कहा—"हमें झाड़ू लगाते समय कीर्त्तन करना चाहिये, भगवान्के नामका जप और उनका स्मरण करना चाहिये, तभी हमपर भगवान् जगन्नाथकी कृपा होगी। यदि हम केवल झाड़ूसे अन्य लोगोंकी भाँति मन्दिर साफ कर देंगे और भगवान्का नाम नहीं करेंगे तो हमारे द्वारा किया गया कार्य केवल कर्म होगा, भक्ति नहीं। उससे हमारी कु सुकृति तो अवश्य बनेगी, किन्तु भगवद्भक्तिमें प्रवेश नहीं होगा।" ऐसा कहकर श्रीमन् स्वयं भगवान्के नामोंका जप करने लगे तथा उनकी देखा-देखी सभी भक्त भी श्रीकृष्णनामका कीर्त्तन करते हुए अपना-अपना कार्य करने लगे। यदि हम भी अपने जीवनमें प्रत्येक कार्य करते हुए भगवान्के नामोंका कीर्त्तन करेंगे तो हमारा हृदय भी स्वच्छ हो जायेगा तथा हम शुद्ध भगवद्भक्तिमें प्रवेश कर पायेंगे।

श्रीमन् महाप्रभु और सभी भक्त सर्वप्रथम झाड़ूके द्वारा तृण-कङ्कड़-पत्थर आदिको एकत्रितकर मन्दिरसे बाहर फेंकने लगे। श्रीमन् महाप्रभु सभी भक्तोंसे बोले—"मैं देखना चाहता हूँ कि किसने सबसे अधिक तृण-धूल आदि एकत्रित की है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने वस्त्रमें तृण-कङ्कड़-धूल आदि एकत्रितकर मुझे दिखाये, मैं उसका निरीक्षण करूँगा, अन्यथा कु

दूसरोंको धोखा देंगे।" ऐसा कहनेके उपरान्त श्रीमन् महाप्रभु सभी भक्तोंके पास जा-जाकर उसके द्वारा एकत्रित तृण-धूल आदिको देखने लगे। जिन्होंने बहुत अच्छेसे सफाई करके बहुत-सा तृण-धूल एकत्रित किया था, महाप्रभुने उनकी तो प्रशंसा की किन्तु जिन्होंने ठीकसे नहीं किया था, महाप्रभुने

उन्हें प्रेमपूर्वक डाँट लगाई। इसके उपरान्त श्रीमन् महाप्रभुने अच्छेसे सफाई करनेवालोंको कहा कि जिन्हें अभी अच्छेसे सफाई नहीं आती है, तुम लोग उन्हें भी सिखाओकी कैसे सफाई की जाती है। इस प्रकार सभी भक्तोंने आनन्दपूर्वक गुण्डिचा झाड़ू लगाकर मन्दिरका मार्जन किया। अन्तमें सबने देखा कि श्रीमन् महाप्रभुने ही सबसे अधिक मैला एकत्रित किया है। एक बार झाड़ूसे सम्पूर्ण मन्दिरका मार्जन करनेपर भी श्रीमन् महाप्रभु सन्तुष्ट नहीं हुए, अतएव उनके कहनेसे सभी पुनः झाड़ू लेकर मन्दिरका मार्जन करने लगे। दूसरी बार सफाई होनेपर श्रीमन् महाप्रभु कु
अभी भी मन्दिरमें सूक्ष्म धूल-कण और दाग-धब्बे बाकी थे जो झाड़ू द्वारा नहीं निकाले जा सकते थे।

एक सौ व्यक्ति सौ घड़े पानीके भरे हुए लिये तैयार खड़े थे और सफाई हो जाये इस बातकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब श्रीमन् महाप्रभुने जल लानेकी आज्ञा दी तो उन लोगोंने सौ घड़े पानी प्रभुके आगे रख दिये। सैकड़ों लोग सरोवरसे जल भरकर ला रहे थे, जिन्हें सरोवरके घाटोंपर स्थान न मिला, वे कु
घड़े सैकड़ों भक्त ले जा रहे थे और इधरसे सैकड़ों भक्त सैकड़ों खाली घड़े ले जा रहे थे। सब लोग जल भर रहे थे, मन्दिरको धो रहे थे और हरिध्वनि भी कर रहे थे। 'कृष्ण' ध्वनिके अतिरिक्त और कु
सभी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर ही परस्परको घड़े दे रहे थे तथा 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर ही एक-दूसरेसे घड़े माँग रहे थे।

इस प्रकार प्रत्येक कार्य कृष्णनामकी ध्वनिके साथ पूर्ण हो रहा था और कृष्णनामके अतिरिक्त अन्य कोई शब्द सुनायी नहीं दे रहा था। यदि कोई घड़ा टूट जाता तो दूसरी ओरसे 'कृष्ण! कृष्ण' की ध्वनि सुनायी पड़ती और शीघ्र ही नये घड़ेका प्रबन्ध किया जाता।

इस प्रकार गुण्डिचा मन्दिरको चारों ओर जलसे धोया गया और प्रत्येक कोनेको अच्छी तरहसे मार्जनकर स्वच्छ किया गया। मन्दिरकी नालीमें बहता जल इस प्रकार प्रतीत हो रहा था, मानो कोई नदीका प्रवाह हो। जलसे मार्जन करनेके पश्चात् मन्दिरमें धूलका एक कण भी नहीं रह गया था। तब श्रीमन् महाप्रभुने देखा कि कहीं-कहीं कु दाग-धब्बे अभी भी बचे हैं। श्रीमन् महाप्रभुने उन्हें अपने उत्तरीय वस्त्रसे मल-मलकर हटाया। इस प्रकार गुण्डिचा मन्दिर श्रीमन् महाप्रभुके हृदयके समान स्वच्छ और निर्मल हो गया।

जगद्गुरु श्रीमन् महाप्रभु इस (गुण्डिचा मन्दिर मार्जन) लीलाके द्वारा यह शिक्षा प्रदानकर रहे हैं कि—यदि कोई सौभाग्यवान जीव श्रीकृष्णको अपने हृदयरूपी सिंहासनपर विराजमान कराना चाहता है, तो सर्वप्रथम उसे अपने हृदयके मलको धोकर स्वच्छ करना चाहिये। हृदयको निर्मल, शान्त और भक्तिसे उज्जवल करना आवश्यक है। हृदयक्षेत्रमें काँटेयुक्त तिनके, धूल और कङ्कड़ादि रूप अनर्थ यदि कु मात्रामें भी रहें तो परमसेव्य भगवान् वहाँ नहीं विराजेंगे। यही गुण्डिचा मन्दिर मार्जनका तात्पर्य है।

मायाबद्ध जीवोंके अनर्थ

हृदयका यह मल अथवा अनर्थसमूह—अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान और योग चेष्टाके अतिरिक्त और कु
रूप गोस्वामिपादने कहा है—

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व विभाग १/११)

जहाँ भक्तिके अतिरिक्त किसी भी प्रकारकी अन्य अभिलाषा, ज्ञान-कर्म-योग-तपादि और भक्तिके प्रतिकूल

भावों द्वारा आत्माकी नित्य स्वाभाविक वृत्ति—'भक्ति' ढकी हुई न हो, वही उत्तमा अर्थात् शुद्धभक्ति कहलाती है।

शुद्धसत्त्वमय भक्तिके बिना हृदयमें श्रीकृष्णका आविर्भाव नहीं होता है।

'अन्याभिलाष' अर्थात् जब तक मैं जगत्में रहूँगा, केवल अपनी इन्द्रियोंके भोगोंमें ही रत रहूँगा—इस प्रकारकी अभिलाषा ही अन्याभिलाषा कहलाती है और यह काँटेयुक्त तृणके समान शुद्धजीवकी सुकोमल हृदयवृत्ति 'केवलाभक्ति' को बिद्ध करती रहती है।

'कर्मचेष्टा' अर्थात् 'याग-यज्ञ, दान, तपस्यादि द्वारा मैं स्वर्गादि उच्चलोकोंके सुख और इस जगत्के सुख भोग करूँगा—ऐसी वासनामयी चेष्टा धूल सदृश है। कर्मरूपी बवण्डर वासनारूप धूलके द्वारा हमारे स्वच्छ और निर्मल हृदयरूपी दर्पणको ढक देता है। सत् और असत् कर्मोंके वासनारूप असंख्य धूलिकण हरिविमुख जीवके हृदयको जन्म-जन्मान्तरों तक मलिन करते हैं, इसलिए उनकी कर्मवासना दूर नहीं हो पाती है। हरिविमुख जीव यह सोचते हैं कि कर्मके द्वारा ही कर्मफलको काटा जा सकता है, परन्तु यह सम्पूर्ण रूपसे भ्रान्त धारणा है, इसके द्वारा तो जीव अपने स्वरूपसे ही वञ्चित हो जाता है। जैसे अग्निको कभी भी घीके द्वारा नहीं बुझाया जा सकता, वैसे ही कर्मके द्वारा कर्मवासनाको भी दूर नहीं किया जा सकता। एकमात्र केवलाभक्ति—शुद्धाभक्तिके द्वारा ही जीवकी समस्त स्वसुख वासनाएँ दूर हो सकती हैं और तब उसका निर्मल हृदय-सिंहासन श्रीभगवान्के विश्रामके योग्य स्थान बन सकता है। इसलिए भक्तकवि श्रील नरोत्तम दास ठाकु
है—"तोमार हृदये सदा गोविन्द विश्राम अर्थात् भक्तके हृदयमें सदा श्रीगोविन्द विश्राम करते हैं।"

'निर्विशेष ज्ञान और योगादि' चेष्टाएँ ठीक कङ्कड़ जैसी हैं। इनके द्वारा श्रीभगवान्‌की सेवा होना तो दूरकी बात है, अपितु ये चेष्टाएँ श्रीहरिकी देहको नुकीले पत्थरके समान बिद्ध करनेवाली हैं। यद्यपि निर्विशेष ब्रह्मके अनुसन्धानकी पहली अवस्थामें हरिनामको गौण रूपमें स्वीकार किया जाता है, किन्तु मुक्ति अथवा ब्रह्म अभिमानकी अवस्थामें उसका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता है, इसलिए भगवान् ऐसे मुक्ताभिमानी दुर्भागे जीवके हृदयमें आविर्भूत नहीं होते हैं।

भगवान् मन्दिरमें सुखपूर्वक आविर्भूत हों, इस कारणसे श्रीगौरसुन्दरने तृण, धूल, कङ्कड़ादि प्रतिकूल वस्तुओंको भगवान्‌के मन्दिरके प्राङ्गणके भीतर नहीं रखा, अपितु स्वयं इन्हें बाहर फेंक दिया।

बहुत बार यह देखा जाता है कि जीवके हृदयसे कर्म, ज्ञानादिकी चेष्टाएँ दूर होनेपर भी उसके हृदयमें सूक्ष्म-सूक्ष्म मल रह जाते हैं। इनकी कु
निषिद्धाचार, लाभ, पूजादिके साथ तुलना की जाती है।

'कु
गति-विधियोंके समान है। पूतना कपटताकी मूर्त्ति थी, बाहरसे ममताकी मूर्त्ति और भीतरसे विषके समान साक्षात् कालमूर्त्ति। साधकके हृदयमें जब तक कपटता रहती है तब तक उसका भगवद्भजनमें प्रवेश ही नहीं होता है। श्रीकृष्णने सर्वप्रथम पूतनारूपी कपटताका वध किया था।

'प्रतिष्ठाशा'—"निर्जनमें भजन करनेसे निर्बोध व्यक्ति मुझे एक बड़ा साधु और महात्मा कहेंगे, इस प्रकारकी जड़ीय आशा अथवा विषयभोगको पानेके लिए पत्थरकी भाँति कठोर हृदयमें कृत्रिम विकार और भावके प्रदर्शनके द्वारा भक्त और अवतार आदि कहलानेकी आशाको 'प्रतिष्ठाशा'

कहते हैं।” उदाहरण स्वरूप कई कनिष्ठ भक्त श्रील हरिदास ठाकु
करते हैं, परन्तु उनके हृदयकी अवस्था श्रील हरिदास ठाकु
पतित हो जाते हैं।

एक बार पाश्चात्य देशोंके कु
श्रीजगन्नाथदेव, श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्रादेवीके दर्शनोंकी अनुमति तो नहीं मिली, परन्तु उन्होंने टोटा गोपीनाथजीके मन्दिर, श्रील हरिदास ठाकु
दर्शन किये। सिद्ध बकु
देखकर उनमेंसे एक भक्तने पुजारीको एक हजार डालर देकर कहा—“यह माला मुझे दे दो।” पुजारीने धनके लोभमें वह माला चुराकर उस तथाकथित भक्तको दे दी। माला प्राप्तकर वह सोचने लगा कि मैं भी इसी मालापर जपकर श्रील हरिदास ठाकु
करेंगे। किन्तु केवल श्रील हरिदास ठाकु
करना ही पर्याप्त नहीं है उनके श्रीचरणकमलोंके आनुगत्यमें नाम–भजन करनेसे ही हृदय स्वच्छ होगा। अनाधिकार चेष्टासे अनिष्ट की ही अधिक आशङ्का होती है। हमें श्रील हरिदास ठाकु
अनुसरण करना चाहिये। चोरी अथवा छलसे, जैसे–कैसे करके शुद्धभक्तोंकी मालाको प्राप्त कर लेनेसे ही कोई शुद्धभक्त नहीं बन जाता, बल्कि उनके द्वारा किया गया इस प्रकारका प्रयास अपराध बन जाता है।

आजकल उचित प्रकारसे नाम जप न करनेपर भी बहुत–से व्यक्ति चार–पाँच किलोके वजनवाली जप–माला रखते हैं। ये लोग बड़े–बड़े मनकोंवाली ऐसी तुलसीकी कण्ठीमालाएँ भी धारण करते हैं, जिनपर ‘राधे–राधे’ अङ्कित

होता है। ऐसा आचरण करनेसे केवल अभिमानकी वृद्धिके अतिरिक्त और कु

'जीवहिंसा'—किसी भी जीवकी हत्या मत करो, यह अहिंसाका सामान्य नियम है। हिंसाका अर्थ केवल हाथों या अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा वध करना ही नहीं है, अपितु जिह्वा, मन और हृदयके द्वारा किसीको कष्ट देना भी हिंसा कहलाता है। यदि हृदयको निर्मलकर भगवान्‌को वहाँ विराजमान करनेकी इच्छा है तो कभी भी किसीसे ईर्ष्या द्वेष नहीं करना चाहिये और वैष्णवोंकी निन्दासे सदैव दूर रहना चाहिये। क्योंकि यह भी एक प्रकारकी हिंसा है। हदयरूपी मलिन मन्दिरमें पड़े हुए ये दाग ऊपरी झाड़-पोंछ या केवल जलसे धोए जानेपर नहीं निकलते। ये दाग-धब्बे वैष्णवोंके चरणकमलोंमें अपराध और गुरुदेवकी अवज्ञाके रूपमें परिलक्षित होते हैं। दस प्रकारके नाम अपराधोंमें सर्वप्रथम शुद्ध वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें किये गये अपराधको रखा गया है। भक्तिमार्गपर निर्विघ्न अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवाले साधकोंको शीघ्र ही इन समस्त अपराधोंसे छुटकारा पानेका प्रयास करना चाहिये। यही शिक्षा देनेके लिए श्रीमन् महाप्रभुने स्वयं अपने वस्त्रोंसे ऊपर-नीचे, इधर-उधर सर्वत्र गुण्डिचा मन्दिरको साफ-सुथराकर कहीं एक भी दाग नहीं छोड़ा, उसे सम्पूर्ण निर्मल कर दिया।

'निषिद्धाचार'—हमें यह समझनेका प्रयास करना चाहिये कि निषिद्धाचार अर्थात् 'न करने योग्य कार्य' क्या हैं? उदाहरण स्वरूप ब्रह्मचारी और संन्यासीको कामवासनाओंसे दूर रहना चाहिये।

असत्सङ्गत्याग,—ऐइ वैष्णव-आचार।
'स्त्रीसङ्गी'—एक, असाधु 'कृष्णाभक्त' आर॥

(चै॰ च॰ म॰ २२/८४)

अवैष्णवसङ्गका त्याग करना ही वैष्णवोंके लिए एकमात्र सदाचार है। 'अवैष्णव' कहनेसे स्त्रीसङ्गी और श्रीकृष्ण-अभक्त दोनोंको ही समझना होगा। स्त्रीसङ्ग दो प्रकारका होता है—'वैधधर्मपर स्त्रीसङ्ग' जो वर्णाश्रमधर्म द्वारा प्रतिष्ठित है, और 'अवैध स्त्रीसङ्ग' जो अधर्मपर है तथा वर्णाश्रमधर्मका विनाश करनेवाला और व्यक्तिको नरकमें ले जानेवाला है। (साधारणतः) संसारमें पापपरायण व्यक्ति वैष्णव होने योग्य नहीं है। धर्म, अर्थ और काम नामक त्रिवर्ग, स्त्रीसङ्गरूपी अवैष्णव आचारमें बँधा हुआ है। मोक्ष नामक चतुर्थ वर्ग स्त्रीसङ्गसे उत्पन्न नहीं होता है, परन्तु स्त्रीसङ्गीकी अपेक्षा अधिक भयङ्कर है। मायावादी और मायाविलासी दोनोंका सङ्ग ही वैष्णवता और शुद्धभक्तिके विनाशका कारण है।

श्रील रूप गोस्वामिपादने अपने ग्रन्थ श्रीउपदेशामृतके प्रथम श्लोकमें भी इन दोषों और अनर्थोंका वर्णन किया है।

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात्॥

"जो धीर पुरुष अपनी वाणीके वेगको, मनके वेगको, क्रोधके वेगको, जिह्वाके वेगको, उदरके वेगको तथा जननेन्द्रियके वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वह समस्त पृथ्वीका शासन कर सकता है अर्थात् ऐसे जितेन्द्रिय व्यक्तिके सभी जन शिष्य हो जाते हैं।"

छह प्रकारके वेगोंका मूल है—जिह्वा। इसमें कोई हड्डी नहीं होती, इसलिए यह हर दिशामें मुड़ सकती है। यदि जिह्वापर नियन्त्रण न हो तो बाकी पाँच वेग व्यक्तिको वशीभूत कर लेते हैं और यदि जिह्वाको वशीभूत कर लिया जाये तो अन्य सभी वेग अपने आप वशमें हो जायेंगे। जिह्वाके दो

कार्य हैं—बोलना और खाना। यदि जिह्वाके प्रथम कार्यपर अङ्कुश न रखा जाये तो व्यर्थके वार्त्तालाप होनेकी आशङ्का अधिक रहती है, जिससे विकट समस्याएँ भी पैदा हो सकती हैं—यहाँ तक कि पूरा जीवन भी नष्ट हो सकता है। मैं इस विषयको एक-दो उदाहरण देकर स्पष्ट करूँगा। यथा—महाराज युधिष्ठिरका राजमहल इतना अद्भुत था कि जल और थलमें भेद करना बहुत कठिन था। एकबार दुर्योधन जलको थल समझकर उसमें गिर पड़ा, तो द्रौपदीने परिहास करते हुए कहा—"अन्धेका पुत्र अन्धा ही होता है" और द्रोपदीके इसी वचनके कारण ही महाभारतका युद्ध हुआ था, जिसमें लाखों लोग मारे गये थे। इसी प्रकार जब भगवान् श्रीराम लक्ष्मणको सीताजीकी देख-रेखमें छोड़कर हिरणरूपी मरीचको पकड़ने गये थे, तो मरीचने श्रीरामके स्वरमें लक्ष्मणको ऐसे व्याकु
मरीचकी इस चालको समझ गये और सीतादेवीके द्वारा अनेक बार श्रीरामकी सहायताके लिए जानेका अनुरोध करनेपर भी वे सीताजीको अकेली छोड़कर वनमें नहीं गये। अन्तमें सीतादेवीने उन्हें क्रोधित होकर कहा—"लक्ष्मण! मैं जानती हूँ, तुम मुझे अपनी पत्नी बनानेके लिए ही इस समय श्रीरामका विनाश ही चाहते हो, इसलिए मेरे इतना कहनेपर भी तुम अपनी जिद्दके कारण उनकी रक्षाके लिए नहीं जा रहे हो।" यद्यपि श्रीरामचन्द्रके प्रति प्रीतिवशतः ही सीताजीके मुखसे पुत्र समान श्रीलक्ष्मणके प्रति ऐसे वचन निकले थे, तथापि सीताजीके ऐसे कटु शब्दोंको सुनकर लक्ष्मणको न चाहते हुए भी उन्हें अकेले छोड़कर वनमें जाना पड़ा और सीताजीका अपहरण हो गया। अन्तमें इसी कारणसे युद्ध भी हुआ।

जिह्वाका दूसरा कार्य है—खाना। माँस, मछली, प्याज, लहसुन आदि निषिद्ध खाद्य पदार्थ और नशीले पदार्थोंका

सेवन तमोगुणकी वृद्धि करता है और व्यक्ति अपने मन और हृदयपर नियन्त्रण नहीं कर पाता है। अनियन्त्रित मनके द्वारा व्यक्ति पाप कर्मोंमें लिप्त होकर अपना विनाश कर लेता है।

जिह्वाको वशमें करनेका बहुत ही सरल उपाय है—भगवान्को भोग अर्पणकर महाप्रसादका सेवन करें और निरन्तर "हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे" महामन्त्रका जप करें।

श्रीउपदेशमृतके द्वितीय श्लोकमें श्रील रूप गोस्वामिपाद कहते हैं—

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति॥

"अधिक आहार या सञ्चय, भक्ति-प्रतिकूल चेष्टा, वृथा-आलाप, नियमाग्रह, असत्सङ्ग एवं लौल्य अर्थात् बुरे मतोंको ग्रहण करनेके लिए चित्तकी चञ्चलता—इन छह दोषोंसे भक्ति विनष्ट हो जाती है।"

अत्याहारका तात्पर्य आवश्यकतासे अधिक आहार करना अथवा विषयोंका संग्रह करना है। सांसारिक विषयोंका संग्रह तथा भक्ति-विरोधी चेष्टाओंमें लगे रहना ही 'प्रयास' है।

समयका दुरुपयोग करनेवाली अनावश्यक वृथा परनिन्दा-परचर्चा करना 'प्रजल्प' कहलाता है। भगवत्सेवाकी प्राप्तिरूप उच्चतम अधिकारकी प्राप्तिके लिए चेष्टा न कर, तुच्छ स्वर्गादिकी प्राप्तिके नियमोंमें आग्रह और भक्ति-पोषक नियमोंके प्रति उदासीन रहना ही 'नियमाग्रह' है।

विशुद्ध भक्तोंके सङ्गको छोड़कर अन्य जनोंका सङ्ग करना ही 'जनसङ्ग' कहलाता है। तुच्छ विषयोंमें चित्तकी चञ्चलता और अनेक मतवादियोंके सङ्गसे अपने मनमें अस्थिरता ही 'लौल्य' का तात्पर्य है।

मनुष्यके हृदयमें जब तक ये दोष और अनर्थ रहेंगे, तब तक श्रीभगवान् वहाँ विराजमान नहीं होंगे। श्रीनित्यानन्द प्रभु और उनके प्रकाश श्रीगुरुदेव इन्हें दूरकर हृदयको निर्मलकर सकते हैं। वे ऐसा करनेमें सक्षम हैं और अहैतुक रूपमें कृपालु भी हैं, परन्तु हमारी चेष्टाके बिना यह सम्भव नहीं होगा, क्योंकि उनकी कृपाको लेना तो हमें ही पड़ेगा। यदि हम इतना भी नहीं करेंगे, तो फिर कैसे काम चलेगा। श्रीगुरुदेव कृपा करके हमें जिस प्रकारका निर्देश देते हैं, श्रीगुरुके उस निर्देशके अनुसार अपना जीवन-यापन करनेसे सफलता निश्चित ही प्राप्त होती है। उदाहरणस्वरूप हम गीतामें अर्जुनका उदाहरण देखते है, जिन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ़चेताः।
यच्छ्र
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥
(गीता २/७)

"(हे कृष्ण!) मैं आपका शिष्य हूँ और मैंने अपनेको आपके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया है। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा और आपके उपदेशोंका भी पालन करूँगा।"

अर्जुनके निष्कपट वचनोंको सुनकर श्रीकृष्णने उनपर कृपा करके उन्हें बहुत-से उपदेश देकर उनके मनके संशयोंको दूर किया तथा श्रीकृष्णने अर्जुनको युद्ध करनेका आदेश दिया, जिसका पालन करनेपर अर्जुन विजयी हुए।

इसी प्रकार यदि शिष्य गुरुकी आज्ञाका पालन करनेके लिए प्रस्तुत होता है तो गुरु शिष्यकी सदा-सर्वदा सहायता करते हैं, परन्तु यदि शिष्य गुरुकी अवज्ञा करता है अथवा

अपनी स्वतन्त्र इच्छाका दुरुपयोग करता है तो यह गुरुके प्रति अपराध होता है और इसके फलस्वरूप शिष्यकी भक्ति नष्ट हो जाती है और उसमें श्रीकृष्णकी सेवा करनेकी इच्छा लुप्त हो जाती है।

सद्गुरुके लक्षण

सद्गुरु अपने आचरणसे शिष्यको शिक्षा देते हैं। उदाहरणके लिए जिस समय श्रीमन् महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिरका मार्जन कर रहे थे, एक नवयुवक गौड़ीय भक्त जलसे भरा घड़ा लाया और उसने श्रीमन् महाप्रभुके चरणकमल धोकर चरणामृतका पान कर लिया। इसपर श्रीमन् महाप्रभु बहुत कु
श्रीजगन्नाथदेव स्वयं भगवान् हैं और वे यहाँ पधारनेवाले हैं। हम उनके आगमनके उपलक्ष्यमें इस स्थानका मार्जन कर रहे हैं। मैं तो एक साधारण प्राणी हूँ, परन्तु फिर भी तुमने मेरे चरण धोये और उस जलको भी पी लिया। यह श्रीजगन्नाथदेवके प्रति अपराध है और इस अपराधका परिणाम हम दोनोंके लिए बुरा होगा।" तब श्रीमन् महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरको बुलाया और कहा—"प्रभो! तनिक अपने इस गौड़ीयका व्यवहार तो देखो। यह ठाकु
अपमान कर रहा है। क्या आपने इसे शुद्धभक्तोंके द्वारा पालनीय विचार नहीं समझाये है? आप इसे बतलाइये कि श्रीजगन्नाथजी जो स्वयं भगवान् हैं, उनके मन्दिरमें मुझ जैसे साधारण व्यक्तिके चरण धोकर उस जलको चरणामृतके समान सेवन करना श्रीजगन्नाथदेव, श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्रादेवीके प्रति अपराध है।"

श्रीमन् महाप्रभुको शान्त करनेके उद्देश्यसे स्वरूप दामोदरने उस नवयुवकको थप्पड़ मारा और उसे मन्दिरसे बाहर ले गये। यद्यपि वास्तवमें श्रीस्वरूप दामोदर उस भक्तसे बहुत

प्रसन्न थे, तथापि धर्म संस्थापनके लिए प्रभु द्वारा किये गये क्रोधका उन्होंने भी समर्थन किया। मन्दिरके बाहर जब वे श्रीमन् महाप्रभुकी दृष्टिसे दूर थे, तो उन्होंने उस भक्तसे कहा—"श्रीमन् महाप्रभु स्वयं श्रीजगन्नाथदेव हैं, परन्तु वे जन-साधारणको यही शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं कि हमें साधारण व्यक्तिके प्रति इस प्रकारका व्यवहार नहीं करना चाहिये। तुमने कु
सर्वोत्तम कार्य किया है। तुम यहीं प्रतीक्षा करो, मैं पुनः तुम्हें भीतर बुला लूँगा और तुम श्रीमन् महाप्रभुसे क्षमा याचना करना।" इसके उपरान्त भीतर बुलाये जानेपर गौड़ीय भक्तने श्रीमन् महाप्रभुके समीप जाकर कहा—"प्रभो! मुझसे भूल हो गयी है। आप कृपा करके मुझे क्षमा कर दीजिये।" उसकी प्रार्थना सुनकर श्रीमन् महाप्रभुने सब कु
कर दिया।

श्रीमन् महाप्रभुने हमें भक्तिके नियम सिखलानेके लिए ही यह लीला की। यदि कोई व्यक्ति अपनी पूजा करनेके लिए कहे तो यह सर्वथा अनुचित है। श्रीविग्रहके सम्मुख किसीसे भी प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना, रोना-धोना, किसीको शासन करना या डाँटना-डपटना नहीं चाहिये। केवल सद्गुरुदेवके अतिरिक्त किसीको भी श्रीविग्रहके सामने प्रणाम नहीं करना चाहिये।

सद्गुरु कभी भी अपनेमें गुरु होने या उन्नत भक्त होनेका अहङ्कारपूर्ण विचार नहीं रखते, वे बिल्कु
करते कि—"मेरा शिष्य मेरे चरणोंमें पुष्प अर्पण करे, मेरे चरणोंपर जल डालकर उन्हें धोये और वही जल वह अन्य व्यक्तियोंपर डाले और फिर उस चरणामृतका स्वयं सेवन करे।" शुद्ध गुरु अथवा वैष्णव ऐसे अहङ्कारसे सर्वदा दूर रहते हैं। वे तो सदा-सर्वदा अपने आपको स्वाभाविक रूपमें

ही बहुत दीन-हीन समझते हैं तथा सदैव भगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना करते रहते हैं।

भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीमती राधिकाके भावोंमें आविष्ट होकर श्रीमन् महाप्रभु भी कहते थे—"न प्रेम गन्ध (चै॰ च॰ म॰ २/४५) मेरे हृदयमें श्रीकृष्णके लिए लेशमात्र भी प्रेम नहीं है। (यदि कोई प्रश्न करे तो फिर आप कृष्णका नाम ले-लेकर रोते क्यों हैं? तो श्रीमन् महाप्रभु उत्तर देते हैं कि) जब तुम मुझे विरहमें क्रन्दन करते देखो, तो यह समझो कि मैं अपने महान भाग्यका झूठा प्रदर्शन कर रहा हूँ। परन्तु निश्चित ही वेणुवादन करते हुए श्रीकृष्णके सुन्दर मुखमण्डलके दर्शनके अभावमें मेरा जीवन कीट-पतङ्गकी भाँति निरर्थक ही व्यतीत हो रहा है। मुझमें श्रीकृष्णके प्रति प्रेमकी गन्ध भी नहीं है। मछली भी मुझसे श्रेष्ठ है, क्योंकि यदि उसे जलसे निकाल दिया जाये तो वह तत्क्षणात् प्राण त्याग देगी, परन्तु श्रीकृष्णके दर्शन न होनेपर भी अब तक मेरे प्राण नहीं निकल रहे हैं। मैं अत्यन्त पतित हूँ।"

यदि कोई सदा श्रीकृष्णके नामका जप और कीर्त्तन करना चाहता है, तो उसे श्रीमन् महाप्रभुके बताये हुए इस निर्देशका अवश्य ही पालन करना चाहिये—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीय सदा हरिः॥

(श्रीशिक्षाष्टक-३)

जो व्यक्ति अपनेको तृणसे भी दीन-हीन समझता है और वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होता है, जो स्वयं अपने सम्मानकी आशा न करते हुए सदा दूसरोंको आदर देता है, ऐसा व्यक्ति ही सदा सहज रूपसे श्रीहरिके नामोंका जप कर सकता है।

उपरोक्त श्लोकमें वर्णित चारों गुणोंके न होनेपर कोई भी व्यक्ति श्रीहरिके नामका जप नहीं कर सकता है।

श्रीहरिका नाम अप्राकृत और दिव्य है, अतएव हम उनका नाम अपनी प्राकृत जिह्वासे उच्चारित नहीं कर सकते और अपने प्राकृत नेत्रोंसे उन प्रभुका दर्शन भी नहीं कर सकते।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फु
(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ २/१०९)

"श्रीकृष्ण नामादि प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण नहीं हो सकते। सेवोन्मुख अवस्थामें उनके नाम-रूप-गुण-लीलादि भक्तकी अप्राकृत जिह्वा, चक्षु आदि इन्द्रियोंमें स्वयं ही प्रकाशित होते हैं।"

श्रीकृष्णका नाम जप ही उनकी सेवा है। नाम जपकी तीन अवस्थाएँ हैं—नामापराध, नामाभास और शुद्ध नाम। जब हम सम्बन्धज्ञान और श्रद्धासे रहित होकर अपनी जिह्वा और अपने प्रयासके साथ नाम करते हैं, तो यह नामापराध कहलाता है। यदि कु
है, किन्तु सम्बन्धज्ञान नहीं है, तो यह नामाभास कहलाता है। सम्बन्धज्ञानसे युक्त होकर पूर्ण श्रद्धा और आत्मसमर्पणसे किया गया नाम शुद्धनाम होता है। यदि शुद्धनामका उच्चारण किया जाये तो श्रीकृष्ण स्वयं ही जिह्वापर नृत्य करते हैं। हमें जप करते हुए श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—"मैं समस्त सांसारिक कामनाओंको छोड़कर स्वयंको आपके श्रीचरणोंमें समर्पित कर रहा हूँ। आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई प्राणप्रिय नहीं है। आप ही मेरे सर्वस्व हैं।"

यद्यपि प्रारम्भिक अवस्थामें हरिनाम जपमें रुचि न भी हो तथापि यह चिन्ताका विषय नहीं है, परन्तु हरिकथा श्रवणमें रुचि अवश्य ही होनी चाहिये। क्योंकि शुद्धभक्तोंके मुखसे

हरिकथा श्रवण करनेसे अवश्य ही हरिनाम जपमें रुचि उत्पन्न होगी ही होगी। हरिकथा सुननेमें रुचि नहीं होनेपर भी उसे पुनः-पुनः श्रवण करना चाहिये और कथा सुनानेवाले विशुद्ध भक्तोंको यथोचित सम्मान देना चाहिये।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसम्विदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि
श्रद्धा-रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

(श्रीमद्भा॰ ३/२५/२५)

(भगवान् कपिलदेवने अपनी माता देवहूतिसे कहा)—"सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ वीर्यवती होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही अविद्या निवृत्तिके पथस्वरूप मुझमें सबसे पहले श्रद्धा, फिर रति और अन्तमें प्रेमभक्तिका उदय होता है।"

वक्ताको सताम् अर्थात् विशुद्ध भक्त होना चाहिये। हमें अपनी समझसे ही एक सामान्य व्यक्ति या साधारण भक्तको महाभागवत माननेकी भूल नहीं करनी चाहिये। कौन मध्यम अधिकारी है और कौन उत्तम अधिकारी है, इस विषयमें हमें अपनेसे उन्नत भक्तोंके मतको ही उचित मानना चाहिये। शुद्धभक्तिका आचरण करते हुए जब हम मध्यम अधिकारीके स्तरपर पहुँचेंगे, तो स्वयं भी इसका निर्णय करनेमें सक्षम हो जायेंगे। यदि हम महाभागवतको यथोचित सम्मान न देकर किसी कनिष्ट वैष्णवको 'महाभागवत' समझने लगें, तो यथार्थ महाभागवतके चरणकमलोंमें यह अपराध होगा। उत्तम भागवत अपने स्वरूपको छिपाकर रखते हैं। श्रील वंशीदास बाबाजी महाराज उत्तम भागवत होनेपर भी गाँजा पीनेका अभिनय करते थे। कभी वे मछलीकी हड्डियाँ अपनी कु

आस-पास बिखेर देते थे, जिससे लोग उन्हें मछली खानेवाला समझें। उनका विचार था—"सांसारिक भोग-विषयोंमें अनुरक्त व्यक्ति मुझसे दूर ही रहें तो अच्छा है, जिससे मैं ऐकान्तिक रूपसे श्रीकृष्णके नामका जप और उनका स्मरण कर सकूँ।"

सद्‌गुरु जो कु
वैष्णवोंकी प्रसन्नताके लिए ही करते हैं। सद्‌गुरुकी कोई भी सांसारिक कामना नहीं होती है। ऐसे ही सद्‌गुरुके पदानुसरण करते हुए हमें यह विचार करना चाहिये कि हमारा तन, मन, वचन, हृदय और भावोंके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिए ही हो।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कु

(गीता ९/२७)

श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—"हे कौन्तेय! तुम जिस भी कर्मका अनुष्ठान करते हो, जो कु
होम करते हो, जो भी दान करते हो तथा जो भी तप करते हो, उन सबको मुझे समर्पण करो।"

यदि हम भी भगवान् श्रीकृष्णके इस निर्देशका अपने जीवनमें दृढ़तापूर्वक पालन करेंगे तो कु
हमारा प्रत्येक कार्य श्रीकृष्ण और उनके प्रियजन गुरुदेवकी प्रीतिके लिए ही होगा। इस प्रकार धीरे-धीरे हमारा हृदय शुद्ध होता जायेगा और हमारे हृदयमें कृष्णप्रेमका आविर्भाव होगा। **गुण्डिचा मन्दिर मार्जनका यही रहस्य है।**

सप्तम अध्याय

रथ-यात्राका प्रसङ्ग

श्रीमन् महाप्रभुके पुरी आनेसे पूर्व रथ-यात्राके समय श्रीजगन्नाथदेव, श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्राजीके रथोंको राजाके सेवक और हाथी ही खींचते थे। रथ-यात्रामें कोई कीर्त्तन और नृत्य न होनेसे लोगोंमें भगवान् श्रीजगन्नाथके प्रति कोई विशेष भाव भी नहीं उदित होते थे। किन्तु श्रीमन् महाप्रभुने ही अहैतुकी कृपापूर्वक अपने परिकरोंके साथ कीर्त्तन-नृत्यके द्वारा अपने आन्तरिक भावोंको प्रकटकर रथ-यात्राको भक्तिरसमय बना दिया और इस रसके आस्वादनके लिये बङ्गाल, उड़ीसा और भारत वर्षके अन्य स्थानोंसे हजारों-लाखोंकी संख्यामें भक्तलोग प्रति वर्ष रथ-यात्रामें आने लगे। आजकल लगभग चालीस लाख लोग प्रतिवर्ष रथ-यात्रामें भाग लेने आते हैं।

रथ-यात्रा आरम्भ होनेवाले दिन प्रातःकाल विश्ववासुके गाँवके दयिताओंके वंशज श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्राजीको मन्दिरसे लाकर रथोंपर बैठाते हैं। अनेकों बलशाली दयिता उन्हें बड़ी कठिनाईसे उठाकर रथके निकट लाते हैं और रस्सियों और कपड़ोंसे बाँधकर उन्हें रथपर चढ़ानेका प्रयास करते हैं। श्रीजगन्नाथजीको रथपर चढ़ाना बड़ा कठिन कार्य होता है और दयिता उन्हें गोपियोंकी भाँति प्रेममें विभोर होकर गालियाँ देकर ऊपर उठाते हैं। कभी श्रीजगन्नाथजी पुनः नीचे आ जाते हैं तो दयिता कहते हैं कि हम यह नहीं जानते कि तुमने कहाँ जन्म लिया है और तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? कोई तुम्हें वसुदेवनन्दन कहता है और कोई

नन्दनन्दन, किन्तु तुम हो कौन, यह तो बतलाओ? इस प्रकार गालियाँ देते हुए दयितायोंको श्रीजगन्नाथजीको रथपर चढ़ानेके लिए तीन–चार–छह घण्टे और कभी–कभी पूरा दिन भी लग जाता है। तीनों रथोंके चारों ओर भक्त निरन्तर कीर्त्तन करते रहते हैं—"जय जगन्नाथ, जय बलदेव, जय सुभद्रा! हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।"

इस प्रकार जब श्रीजगन्नाथदेव, श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्राजी नवीन विशाल रथोंपर विराजमान हो जाते हैं, तब रथ–यात्रा प्रारम्भ होती है। श्रीबलदेव प्रभुका रथ सबसे आगे होता है, उनके पीछे श्रीसुभद्राजीका रथ और सबसे पीछे श्रीजगन्नाथदेवका रथ होता है।

प्रति वर्ष श्रीजगन्नाथदेवकी रथ–यात्रा प्रारम्भ होनेसे पूर्व उड़ीसाके राजा रथ चलनेवाले मार्गपर झाड़ू लगाकर उसे साफ करते हैं, यह प्रथा प्राचीन कालसे ही है। राजा अपनी राज–पोशाकका त्यागकर साधारण व्यक्ति जैसे वस्त्र धारण करते हैं और अपने हाथोंसे मार्गमें चन्दन जल छिड़ककर स्वर्णके हत्थेवाले झाड़ूसे मार्गकी सफाई करते हैं।

रथ–यात्रामें सपरिकर श्रीचैतन्यदेव

जब भगवान् श्रीजगन्नाथदेवका रथ गुण्डिचा मन्दिरकी ओर चलनेके लिए प्रस्तुत हो गया, तब श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने सभी भक्तोंको एकत्रित किया और स्वयं अपने करकमलोंसे उन्हें पुष्प मालाओं और चन्दनसे अलंकृत किया। इसके उपरान्त श्रीमन् महाप्रभु अपने अन्तरङ्ग परिकरोंको कीर्त्तनके लिए चार मण्डलियोंमें विभक्त कर दिया। प्रत्येक मण्डलीमें छह जन गानेवाले तथा दो मृदङ्ग बजानेवाले थे। प्रत्येक मण्डलीमें दो–दो मृदङ्ग देकर श्रीमन् महाप्रभुने कीर्त्तन प्रारम्भ करनेका आदेश दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभु पहली मण्डलीमें

नृत्य कर रहे थे, श्रीअद्वैताचार्य दूसरीमें, श्रीहरिदास ठाकु
तीसरीमें और श्रीवक्रेश्वर पण्डित चौथी मण्डलीमें अति
सुन्दर परिपाटीसे नृत्य कर रहे थे। वे सभी अत्यन्त कु
नर्तक थे और उनमें निरन्तर दिन-रात नृत्य करनेकी क्षमता
थी। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीवास पण्डित, मुकु
घोष चार मण्डलियोंके प्रधान गायक थे।

रथ-यात्रामें श्रीमन् महाप्रभुका वैभव प्रकाश

श्रीमन् महाप्रभुने तीन और मण्डलियोंका गठन किया।
पहली मण्डली कु
शान्तिपुरके भक्तोंकी थी और तीसरी श्रीखण्डसे आये
भक्तोंकी थी। पहली चार मण्डलियोंमें विभाजित भक्त
श्रीजगन्नाथदेवके रथके सामने नृत्य-गानकर रहे थे। दूसरी
तीन मण्डलियोंमेंसे एक-एक मण्डली रथके दोनों ओर थी
और एक मण्डली रथके पीछे कीर्त्तन और नृत्य कर रही
थी। इस प्रकार सात मण्डलियोंमें विभाजित होकर भक्त
कीर्त्तन कर रहे थे और प्रत्येक मण्डलीके पीछे हजारोंकी
संख्यामें अन्य भक्त चल रहे थे।

भक्तोंको कीर्त्तनके लिए विभिन्न मण्डलियोंमें विभाजित
करनेके उपरान्त श्रीचैतन्य महाप्रभुने स्वयं नृत्य करना
आरम्भ किया। एक ही श्रीचैतन्य महाप्रभुने उस समय
अपनेको सात रूपोंमें प्रकाश किया और एक साथ सातों
मण्डलियोंमें नृत्य-गान करने लगे। उनके नेत्रोंसे निरन्तर
अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और वे उसी प्रकार तीव्र गतिसे
नृत्य करने लगे, जिस प्रकार श्रीकृष्ण अपनी लीलामें नृत्य
करते थे। श्रीमन् महाप्रभुके एक साथ सभी मण्डलियोंमें
प्रकटित होनेपर भी प्रत्येक मण्डलीके भक्त इस प्रकार सोच
रहे थे कि श्रीमन् महाप्रभु केवल उनके साथ ही हैं और वे
सभी प्रसन्न होकर नृत्य और गानकर रहे थे। श्रीकृष्ण भी

अपनी लीलामें अपने परिकरोंको ऐसा ही आनन्द प्रदान करते हैं। जब भाण्डीरवनमें श्रीकृष्ण अपने सखाओंके साथ भोजन करने बैठे थे, तब उनके अनेकानेक सखा उनके चारों ओर बैठे थे। कु
उनके दोनों ओर, कु
निकट थे और कु
सखाओंको यही प्रतीत हो रहा था कि श्रीकृष्ण केवलमात्र उनके सामने ही बैठे हैं और उनके साथ भोजन कर रहे हैं। प्रत्येक सखाको यही प्रतीत हो रहा था कि—"मैं श्रीकृष्णको खिला रहा हूँ और वे मुझे खिला रहे हैं।" इसी प्रकार रासलीलाके समय भी ऐसा प्रतीत हो रहा था कि शत-कोटि गोपियोंके साथ शत-कोटि श्रीकृष्ण हैं। प्रत्येक दो-दो गोपियोंके बीच श्रीकृष्ण थे और प्रति दो-दो श्रीकृष्णके बीच एक गोपी थी। श्रीमन् महाप्रभुने भी ऐसा ही चमत्कार इस लीलामें प्रदर्शित किया।

राजा प्रतापरुद्र, काशी मिश्र और सार्वभौम भट्टाचार्यके अतिरिक्त अन्य सभी भक्त श्रीचैतन्य महाप्रभुको केवल अपनी-अपनी ही मण्डलीमें देख पा रहे थे। श्रीमन् महाप्रभुकी कृपासे ही राजा प्रतापरुद्रने उन्हें एक साथ सातों मण्डलियोंमें नृत्य करते देखा। श्रीमन् महाप्रभुका ऐसा ऐश्वर्य और ऐसी कृपा देखकर राजाके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे पृथ्वीपर गिरकर लोटने लगे, तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने उन्हें उठाया। राजाने पूछा—"मैं यह क्या देख रहा हूँ? क्या यह मेरा भ्रम है? श्रीमन् महाप्रभु यहाँ भी हैं और वहाँ भी हैं। वे एक साथ सातों मण्डलियोंमें नृत्य कर रहे हैं।" सार्वभौम भट्टाचार्यने राजासे कहा—"तुम बहुत भाग्यशाली हो। तुम्हें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा प्राप्त हुई है, तभी तुम उनकी ऐसी ऐश्वर्यमय लीलाका दर्शन कर पा रहे हो।"

जहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेवके सामने नृत्य कर रहे थे, वहाँ भीड़को उनके निकट आनेसे रोकनेके लिए भक्तोंने तीन घेरोंका गठन किया। प्रथम घेरेका नेतृत्व श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु कर रहे थे। काशीश्वर और गोविन्दके नेतृत्वमें भक्तोंने हाथोंको जोड़कर द्वितीय घेरेका निर्माण किया। राजा प्रतापरुद्र, उनके निजी सहायकों और सैनिकोंने मिलकर तीसरा घेरा बनाया। प्रतापरुद्रके सेनापति हरिचन्दन भी राजाके साथ वहाँ उपस्थित थे और अपने सैनिकोंके साथ मिलकर वे नृत्य करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुके दर्शनोंके लिए उत्सुक भीड़से महाराज प्रतापरुद्र और अन्य दो घेरोंकी रक्षा कर रहे थे।

श्रीमन् महाप्रभु महाभावमें आविष्ट होकर नृत्य कर रहे थे और श्रीवास पण्डित, जो श्रीनारद ऋषि हैं, तन्मय होकर महाप्रभुका दर्शन कर रहे थे। श्रीवास पण्डित राजा प्रतापरुद्रके आगे खड़े थे, इसलिए राजा श्रीमन् महाप्रभुको देख नहीं पा रहे थे। राजा प्रतापरुद्रने हरिचन्दनके कन्धोंपर हाथ रखकर अपने शरीरको उठाया, जिससे वे नृत्य करते हुए श्रीमन् महाप्रभुके दर्शन कर सकें। परन्तु श्रीमन् महाप्रभुका नृत्य देखनेमें निमग्न श्रीवास पण्डित एक ओरसे दूसरी ओर झूम रहे थे, जिससे राजाको श्रीमन् महाप्रभुके दर्शन करनेमें बाधा पड़ रही थी। हरिचन्दनने श्रीवास पण्डितको हाथसे स्पर्श करते हुए कहा—"महाराज नृत्य देखना चाहते हैं, इसलिए एक ओर हटकर खड़े हो जाओ।" श्रीवास पण्डितने श्रीमन् महाप्रभुके नृत्यका दर्शन करनेमें विभोर होनेके कारण इस बातपर कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु जब हरिचन्दन बार-बार उन्हें इधर-उधर धक्का देने लगा, तो क्रोधित होकर श्रीवास पण्डितने उन्हें थप्पड़ मारकर चुपचाप खड़े होनेके लिए कहा।

सेनापति हरिचन्दन बहुत ऊँचे, लम्बे और शक्तिशाली थे जैसे ही वे श्रीवास पण्डितको बन्दी बनानेके लिए तत्पर हुए, उसी क्षण राजा प्रतापरुद्रने उन्हें रोक दिया। राजा बोले—"शान्त हो जाओ। ये श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर हैं और श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं। तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो जो ऐसे उत्तम भागवतने तुम्हें मारा है। इसे इनके प्रसादके रूपमें ग्रहण करो।" यह सुनकर सेनापति शान्त हो गये।

भगवान् श्रीजगन्नाथदेवका रथ बीच मार्गमें 'बलगण्डि' नामक स्थानपर पहुँचकर रुक गया। वहाँ दाहिनी ओर नारियलका वन था और बाँयी ओर वृन्दावन जैसा सुन्दर पुष्पोंका उद्यान था।

सेई स्थले भोग लागे,—आछये नियम।
कोटि भोग जगन्नाथ करे आस्वादन॥

जगन्नाथेर छोट-बड़, जत भक्तगण।
निज-निज उत्तम-भोग करें समर्पण॥

राजा, राजमहिषीवृन्द, पात्र, मित्रगण।
नीलाचलवासी जत छोट बड़ जन॥

नाना-देशेर देशी जत यात्रिक जन।
निज-निज-भोग ताँहा करे समर्पण॥

आगे-पाछे, दुई पार्श्वे उद्यानेर वने।
जेई जाहा पाय, लगाय,—नाहिक नियमे॥

(चै॰ च॰ म॰ १३/१९७-२००)

यहींपर श्रीजगन्नाथदेवको भोग लगानेका नियम है। अतएव इसलिए श्रीजगन्नाथदेवके छोटे-बड़े सभी भक्त अपने-अपने भावानुसार उन्हें उत्तम भोग अर्पण करने लगे। राजा, रानियाँ, राजमहलके अन्यजन, छोटे-बड़े सभी नीलाचलवासी और अन्यान्य स्थानोंसे आये सभी यात्रीगण भगवान् श्रीजगन्नाथको अपना-अपना भोग अर्पण करने लगे। वहाँ इतनी भीड़ हो

गयी कि भगवान् श्रीजगन्नाथजीके रथके समीप आना सभीके लिए सम्भव नहीं था, इसलिए आगे-पीछे और दोनों ओर स्थित उद्यान और वनमें जो जहाँ था, वहींसे भोग लगाने लगा। भगवान् श्रीजगन्नाथदेवने सभीके भोगको दृष्टिके द्वारा ग्रहण किया।

बहुत देर नृत्य करनेसे क्लान्त होकर श्रीमन् महाप्रभु बाँयी ओरके उद्यानमें चले गये। वहाँ पहुँचनेपर श्रीमन् महाप्रभु एक वृक्षके नीचे लेटकर सुगन्धित शीतल वायुका सेवन करने लगे। व्रजकी लीलाओंका स्मरण हो आनेसे वे प्रेमाविष्ट हो गये।

राजा प्रतापरुद्रपर कृपा

राजा प्रतापरुद्र श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके परामर्शके अनुसार श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीराय रामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदरके पास गये और उन्हें प्रणामकर बोले—"मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुकी चरणसेवा करने जा रहा हूँ, आपलोग मुझे आशीर्वाद दीजिये।" तदनन्तर राजा अपने राजसिक वस्त्र-आभूषण उतारकर केवल एक साधारण धोती पहनकर श्रीमन् महाप्रभुके निकट पहुँचे और उनके चरणकमल अपने हाथोंमें लेकर धीरे-धीरे कु
साथ-ही-साथ मधुर स्वरमें उन्होंने रासपञ्चाध्यायीके गोपीगीतको गाना आरम्भ किया—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रज
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्
त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥
(श्रीमद्भा॰ १०/३१/१)

गोपियोंने कहा—"हे प्रियतम! तुम्हारे द्वारा इस व्रजमें जन्म लेनेके कारण यह व्रजमण्डल वैकु

भी अधिक महिमायुक्त हो रहा है। इसी कारणसे सब प्रकारके सौन्दर्य और सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी श्रीलक्ष्मी सदा-सर्वदा इस व्रजको अलंकृत करती हुई यहाँ निवास कर रही हैं। किन्तु नाथ! ऐसे अत्यधिक आनन्दसे परिपूर्ण इस व्रजधाममें तुम्हारी प्रेयसी हम गोपियाँ ही तुम्हारे विरहमें अत्यन्त दुःखी हैं, तथापि केवल तुम्हारे लिए ही अपने प्राणोंको धारण कर रही हैं और तुम्हें चारों ओर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कातर हो गयी हैं, अतएव अब तो दर्शन दो।"

राजा प्रतापरुद्र जब भावविह्वल होकर गा रहे थे, तो श्रीमन् महाप्रभु उसे सुनकर और भी भावाविष्ट हो गये और उनका हृदय और अधिक विगलित होने लगा। राजाके द्वारा मधुर स्वरमें उच्चारित श्लोक सुनते ही उन्होंने पूछा—"अहा! कौन मेरे कानोंमें यह अमृत डाल रहा है? गाते रहो, गाते रहो, मुझे इस अमृतका पान कराते रहो।"

तब राजा आगे गाने लगे—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/३१/९)

(हे श्रीकृष्ण!) तुम्हारा कथारूप अमृत तुम्हारे विरहसे कातर लोगोंके लिए जीवनस्वरूप है। विज्ञ व्यक्ति अर्थात् (ब्रह्मा, शिव, चतुःसन आदि) कविगण भी उसकी स्तुति किया करते हैं। तुम्हारी कथा प्रारब्ध और अप्रारब्ध पापोंका नाश करनेवाली, श्रवणमात्रसे ही मङ्गल प्रदान करनेवाली, प्रेमरूपी सम्पत्तिको प्रदान करनेवाली तथा कीर्त्तन करनेवालेके द्वारा विस्तारित होती है। अतएव जो व्यक्ति इस संसारमें तुम्हारी लीलाकथाका कीर्त्तन करता है, वही सर्वश्रेष्ठ दाता है।

जैसे ही श्रीमन् महाप्रभुने राजाके मुखसे यह श्लोक सुना, तो वे अपने आपपर नियन्त्रण नहीं रख सके, उन्होंने प्रेमावेशमें राजाका आलिङ्गन किया और पूछा—"तुम कौन हो जो मेरा इतना हित कर रहे हो?"

राजा प्रतापरुद्रने उत्तर दिया—"मैं तो आपके दासोंका कोई क्षुद्र दास हूँ।"

श्रीमन् महाप्रभुने कहा—

"तुमि मोरे दिले बहु अमूल्य रत्न।
मोर किछु दिते नाहि, दिलुँ आलिङ्गन॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/११)

"तुमने मुझे बहुत अमूल्य रत्न दिये हैं, किन्तु मैं तो एक निष्किञ्चन भिखारी हूँ। मेरे पास कोई धन नहीं है, इसलिए मैं तुम्हें कु
आलिङ्गन दे सकता हूँ, यही मेरा एकमात्र धन है।" इसके पश्चात् श्रीमन् महाप्रभुने राजाको हृदयसे लगा लिया। तब उन दोनोंकी आँखोंसे निरन्तर अश्रु प्रवाहित होने लगे।

गोपीगीतके गूढ़ भाव

गोपीगीतके सभी श्लोक अतीव सुन्दर और गम्भीर अर्थवाले हैं। सभी श्लोक आगे-पीछेके श्लोकोंसे सम्बन्धित हैं और रसिक वैष्णव प्रत्येक श्लोककी व्याख्या एक या अधिक प्रकारसे करते हैं। ये श्लोक तीव्र विरहके मार्मिक भाव प्रस्तुत करते हैं। गोपियाँ विरहके भावमें इस प्रकार विकल होकर प्रार्थना कर रही हैं—"हे कृष्ण! हमें आकर दर्शन दीजिये, नहीं तो हम प्राण त्याग देंगी।"

जन्मना व्रजः...—आपने व्रजमें, गोकु
इसलिए महालक्ष्मी भी झाड़ू लगाकर और अन्य सेवाएँ कर वृन्दावनको सुन्दर बनाती हैं। यह व्रज ही आपकी मधुर लीलाओंके लिए सर्वोत्तम स्थान है।

तव कथामृतं...—इस श्लोकके अनेकों अर्थ हैं, परन्तु यहाँ दो अर्थोंको संक्षेपमें बताया जा रहा है। प्रथम अर्थ साधारण है और दूसरा गूढ़ अर्थ है।

(तव कथामृतं श्लोकका प्रथम अर्थ)

आपकी लीलाकथा जीवोंके लिए अमृतके समान हैं और यदि कोई इन लीलाओंका श्रवण करे, तो आप स्वयं हरिकथाके रूपमें उसके हृदयमें प्रवेश करते हैं।

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्॥
(श्रीमद्भा॰ १/२/१७)

"जो इन लीलाओंको एकाग्र होकर श्रवण करते हैं, श्रीकृष्ण उनके कर्णों और हृदयमें स्वयं प्रवेश कर जाते हैं। तब वे एक प्रिय और अन्तरङ्ग मित्रकी भाँति उस व्यक्तिके हृदयसे काम, क्रोध, सांसारिक भोग वासनाएँ और सभी अनर्थोंको दूर कर देते हैं। भक्तिकी इन बाधाओंको हृदयसे निकालकर वे हृदयको स्वच्छ और निर्मल बना देते हैं और उसके बाद वे स्वयं वहाँ नित्यकालके लिए विराजित हो जाते हैं।"

जीव अनादि कालसे भगवत्-विमुख होकर आवागमनके चक्करमें पड़कर अत्यन्त दुःख प्राप्त कर रहा है। परन्तु इस भयङ्कर दुःखोंकी ज्वालासे झुलसते जीवोंके लिए कृष्णकी लीलाकथाएँ अमृत जैसी हैं। श्रद्धापूर्वक उन लीलाओंका सेवन करनेसे जीवोंकी वह दुःख-ज्वाला सदाके लिए शान्त हो जाती है।

विषैले सर्पके काटनेसे परीक्षित् महाराजकी मृत्यु सात दिनोंके बाद निश्चित थी और इस जगत्में कोई भी उन्हें बचानेमें सक्षम नहीं था। इसलिये उन सात दिनोंके लिए वे

गङ्गाके तटपर खाना, पीना, निद्रा सभी कु
श्रीशुकदेव गोस्वामीसे हरिकथा श्रवण करने लगे।

> निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
> भवौषधाच्छ्र
> क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
> पुमान् विरज्येत बिना पशुघ्नात्॥
>
> (श्रीमद्भा॰ १०/१/४)

उत्तमश्लोक श्रीहरिका गुणानुकीर्त्तन श्रौत-परम्परासे साधित होता है अर्थात् श्रीगुरुमुखसे श्रुत होकर बादमें कीर्त्तित होता है। उन श्रीहरिका गुण-कीर्त्तन कृष्णेतर-विषय-तृष्णा-रहित मुक्त-कु
(मुमुक्षुओंके लिए) भव-रोगकी अचुक औषधिस्वरूप है। यह (रुचिपरायण भक्तोंके लिए) हृत्-कर्ण-रसायन है। पशुघाती व्याध अथवा आत्मघाती अपराधियोंके अतिरिक्त और कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति है, जो इस हरिकीर्त्तनसे विमुख हो जाये?

श्रील शुकदेव गोस्वामीमें लेशमात्र भी सांसारिक भोग-वासना नहीं थी। उनके समान रसिक तत्वज्ञ भक्तके द्वारा कही गयी हरिकथा ही भवरोगकी अव्यर्थ औषध है, क्योंकि इसीसे भवरोगके साथ-साथ हर प्रकारके रोग दूर हो सकते हैं। काम-क्रोध और सांसारिक भोग-विलासकी इच्छाके साथ-साथ भौतिक त्रितापरूपी सर्पदंश भी शीघ्र दूर हो जाते हैं।

तव कथामृतं तप्त जीवनं—तत्वज्ञ रसिक भक्तोंके मुखारविन्दसे श्रीकृष्णकथा श्रवण करनेवालेको परम शान्ति प्राप्त होती है और उसे एक नया जीवन मिलता है। ऐसी हरिकथाके नियमित श्रवणसे व्यक्तिका न केवल वर्त्तमान जीवन, अपितु अगले जन्म भी सुखमय हो जाते हैं। मनुष्य क्रमशः भक्तिके सोपानपर चढ़ता हुआ भगवत्-धामको प्राप्त करता है, जहाँ वह आनन्दके सागरमें सदाके लिए डूब जाता है।

कविभिरीडितं—श्रीब्रह्मा, श्रीशुकदेव गोस्वामी, श्रीवाल्मीकि, श्रीकृष्ण द्वैपायन श्रीव्यासदेव आदि महान कवि कृष्णकथाका गान करते हैं। **कल्मषापहम्**—श्रीकृष्णकथाके श्रवण-कीर्त्तनसे सभी प्रकारके पाप और कर्मफल शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। **श्रवणमङ्गलं**—श्रीकृष्णकथाका निरन्तर श्रवण करनेसे जीवनमें सभी प्रकारके शुभफल प्राप्त होते हैं। **श्रीमदाततं**—हरिकथाके कीर्त्तनकारीका श्री अर्थात् यश सम्पूर्ण विश्वमें फैल जाता है। **भूरिदा**—इस जगत्में सर्वश्रेष्ठ दाता वही व्यक्ति है जो कृष्णकथाका दान करता है। ऐसे दाता श्रीकृष्णकी महिमाका गानकर समस्त विश्वका उद्धार करते हैं। राजा अपना समस्त राज्य और धनवान व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण धन-सम्पत्तिका दान करनेपर भी भूरिदा नहीं बन सकते। श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंकी कथा करनेवाले व्यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ दाता होते हैं।

(तव कथामृतं श्लोकका दूसरा अर्थ)

तव कथामृतं—तुम्हारे वियोगमें तुम्हारी कथा अमृत नहीं मृतम्—'विष' है। इसका कारण है कि वियोगमें तुम्हारी लीलाकथाओंके श्रवणसे विरहाग्नि और भी अधिक तीव्र हो उठती है तथा हम उसकी ज्वालासे छटपट करने लगती हैं।

तप्त जीवनं—श्रीमती राधिकाके समान ही अन्य गोपियाँ कहती हैं—"हम इस बातका प्रमाण हैं। पहले हम अपने-अपने परिवारमें पूर्ण रूपसे प्रसन्न रहती थीं। परन्तु जबसे इन श्रीकृष्णसे हमारी प्रीति हुई है, तभीसे ये समस्त विपदाएँ आरम्भ हो गयी और अब तो हम बिलकु
इन्होंने हमें रास्तेका भिखारी बना दिया है, हमारे पास आश्रय लेनेका भी कोई स्थान नहीं है और अब तो हमारे प्राण भी छूटनेवाले हैं। यदि कोई अपने परिवारके साथ प्रसन्न रहना चाहता है, तो उसे कदापि ताप प्रदान करनेवाली श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंका श्रवण नहीं करनी चाहिये।

कविभिरीडितं—कवि तो एक कागजके घोड़ेकी भी प्रशंसा कर सकते हैं। "यह घोड़ा बहुत शक्तिशाली है और वायु एवं मनकी गतिसे भी तेज दौड़ सकता है", परन्तु उन कवियोंके ऐसे शब्दोंका कोई मूल्य नहीं होता। इसी प्रकार ऐसे ही कवियोंने कहा है—"हरिकथा श्रवण करनेसे तुम्हारा सब प्रकारसे कल्याण होगा।" परन्तु यह सत्य नहीं है। श्रीकृष्णने हमें छला है और उनकी कथाओंने भी हमें छला है। अब हमें इन कथाओंसे कोई भी प्रयोजन नहीं है और हम कृष्णकथाका श्रवण करनेमें रुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको सावधान करना चाहती हैं कि वे भी कदापि ऐसा न करें। अन्यथा यदि कोई स्त्री इन कथाओंका श्रवण करेगी, तो वह अपने पति-सन्तानको भूल जायेगी। वह बिना घोंसलेके एक पक्षीके समान हो जायेगी और स्वयं सदा विलाप करेगी और अपने बन्धुओंको भी रुलायेगी।

जो अपने परिवारमें स्वजनोंके साथ सुखपूर्वक रहना चाहते हैं, उन्हें इस काले कृष्णकी कथा नहीं सुननी चाहिये। यदि कोई भूलसे भी ऐसी कथाओंको सुनता है, तो उसका अपने परिवारसे सम्बन्ध-विच्छेद अवश्यम्भावी है। वह पागल हो जायेगा और सदा 'कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!' कहकर इधर-उधर भटकता रहेगा, जैसे हम भटक रही हैं। इसलिए कृष्णका गुणगान निःसन्देह विष है।

जो इस प्रकार पागल नहीं बनना चाहते, उन्हें श्रीकृष्णकी कथाएँ श्रवण नहीं करनी चाहिये, विशेषकर ठगोंके मुखसे तो कदापि नहीं सुननी चाहिये। ये ठग बगलमें एक पुस्तक दबाकर लोगोंके पास जाते हैं और उन्हें इस प्रकार प्रलोभन देते हैं—"मेरे निकट आओ। मैं आपको मधुर-मधुर हरिकथा सुनाने आया हूँ। चिन्ता मत करो आपको इसका कोई मूल्य नहीं देना होगा, यह कथा मैं निःशुल्क सुनाऊँगा, केवल श्रवण करो।" ऐसे कपटी कवि शुकके समान मधुर स्वरमें

हरिकथा सुनाकर श्रोताको मोहित कर लेते हैं वह श्रोता भी कथामें डूब जाता है। तब वह श्रोता घर-बार, परिवार सब कु
तो उस क्रूर व्याधके समान है, जो अपनी वंशीकी मधुर तानसे हिरणोंको आकर्षित कर लेता है और समीप आनेपर उनका वध कर डालता है। ये ठग पाठक ही 'भूरिदाजनाः' अर्थात् श्रोताओंका नाश करनेवाले अर्थात् उन्हें मारनेवाले हैं—इनसे सावधान रहना ही उचित है।

श्रीराधाजी और उनकी सखियाँ आगे बोलीं—"परन्तु हम कर ही क्या सकती हैं? हम श्रीकृष्णकी लीलाकथाएँ श्रवण करना और उन्हें स्मरण करना तो कदापि छोड़ नहीं सकतीं। इस प्रकार कृष्णप्रेममें विह्वल होकर श्रीराधाजी और उनकी सखियाँ चाहकर भी श्रीकृष्णको एक क्षणके लिए भी भुला नहीं पाती हैं।

एक ही भावनाकी अभिव्यक्ति दो प्रकारसे की जा सकती है—एक अन्वय भाव (अर्थात् साक्षात् रूप) से और दूसरी व्यतिरेक भाव (अर्थात् विपरीत रूप) से। परन्तु उनका तात्पर्य एक ही समान होता है। यद्यपि यहाँपर उपरोक्त श्लोककी अन्वय तथा व्यतिरेक—दो प्रकारसे व्याख्या की गयी है, तथापि दोनों प्रकारकी व्याख्याओंका गूढ़ तात्पर्य यही हैं कि श्रीकृष्णकी लीलाकथाएँ सदा-सर्वदा ही श्रवण करनी चाहिये, जिसके फलस्वरूप समस्त सांसरिक आसक्तियाँ और बन्धन सहज ही कट जाते हैं।

अष्टम अध्याय

रथ-यात्रामें श्रीमन् महाप्रभुका भाव

रथ-यात्राके समय श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके रथके सामने भावाविष्ट होकर श्रीजगन्नाथदेवकी स्तुति करने लगे।

श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथदेवको द्वारकाके वासुदेव श्रीकृष्णके रूपमें न देखकर अपने प्राणवल्लभ व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके रूपमें ही उनका दर्शन किया करते थे। श्रीमन् महाप्रभु राधाभाव और कान्तिसे युक्त स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। इस लीलामें वे श्रीमती राधाजीके भावोंमें विभावित होकर व्रजकी लीलाओंका स्मरण करते हुए श्रीमद्भागवतका एक श्लोक कहने लगे—

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/९०/४८)

"समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामीके रूपमें निवास करनेवाले अथवा गोपों और यादवोंके बीच निवास करनेवाले अथवा जो सब जीवोंके निवास अर्थात् आश्रय हैं, वस्तुतः अजन्मा होनेके कारण जिनका देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहण करना वादमात्र है, वास्तवमें वे गोपी यशोदाके ही पुत्र हैं, यदुवंशके प्रमुख जिनके सेवक हैं, इच्छामात्रसे प्रलय करनेमें समर्थ होनेपर भी अपने बाहुबल अथवा अपने बाहुके समान अर्जुनादि भक्तोंके द्वारा धर्म-विरोधी असुरोंका संहार करनेवाले,

स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके सांसारिक-दुःखोंको हरण करनेवाले अथवा व्रजपुरमें अपने निजजनोंके विरहजनित सन्तापका नाश करनेवाले और अपने मनोहर मन्द मुस्कानसे युक्त श्रीमुखके द्वारा व्रजपुरकी वनिताओंके कामको वर्द्धन करनेवाले, वे श्रीकृष्ण जययुक्त होंवे।"

कु
भावोंमें विभावित थीं, उन्हीं भावोंमें विभावित होकर श्रीचैतन्य महाप्रभु यह प्रार्थना कर रहे हैं। कु
अपने भावोंसे श्रीकृष्णको वृन्दावनमें ले जाकर उनका पुष्पोंसे शृङ्गार करती हैं। अपने भावोंसे ही वे बलपूर्वक उन्हें वह बाँसुरी देती हैं, जो श्रीकृष्ण वृन्दावनमें मैया यशोदाके पास छोड़ आये थे। साथ ही वे श्रीकृष्णको मोर पङ्ख भी देती हैं और धीरेसे उनके कानोंमें इस प्रकार बोलती हैं—"यह भूल जाना कि तुम्हारे पिता वासुदेवजी और मैया देवकी हैं। यह मत कहना कि तुम यदुवंशके हो या यादव हो। यही कहो कि मैं यशोदा मैयाका लाडला गोपाल हूँ, नन्दबाबाका प्यारा कन्हैया हूँ।" श्रीकृष्णने उत्तर दिया—"हाँ, हाँ, अवश्य ही मैं तुम्हारे निर्देशका पालन करूँगा।"

श्रील सनातन गोस्वामीने श्रीबृहद्भागवतामृत (२/५/१५२ श्लोककी टीका) में भी उपरोक्त श्लोकका उल्लेख किया है। इसके अनेक गूढ़ अर्थ हैं। इसी श्लोकमें सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत निहित है।

यद्यपि 'जननिवास' का साधारण अर्थ है—"जो सबके हृदयमें सदैव परमात्माके रूपमें स्थित हैं।" तथापि श्रीकृष्ण व्रजवासियोंके हृदयमें परमात्माके रूपमें नहीं रह सकते, वे तो वहाँ केवल व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके रूपमें ही वास करते हैं। 'जन' शब्दका दूसरा अर्थ है—निजजन (अत्यन्त प्रियजन), अतः इसका अर्थ है—श्रीकृष्णके निज-परिकर। सभी व्रजवासी श्रीकृष्णके निजजन हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण

नन्दबाबा, यशोदा मैया, सभी सखाओं और मुख्यतः गोपियोंके प्राण-धन हैं। श्रीकृष्ण 'राधिकार-जीवनेर जीवन' अर्थात् श्रीराधाजीके प्राणोंके भी प्राणस्वरूप हैं और वे सदैव श्रीमती राधिकाके हृदयमें वास करते हैं। यह सम्बन्ध दोनों ओरसे ऐसा ही है, अर्थात् जिस प्रकार श्रीकृष्ण व्रजवासियोंके जीवन हैं, उसी प्रकार व्रजवासी भी श्रीकृष्णके प्राणस्वरूप हैं।

'देवकी जन्मवादो'—केवल मथुरावासी और जगत्के लोग ही ऐसा कहेंगे कि श्रीकृष्णने मैया देवकीके गर्भसे जन्म लिया है। साधारणतः लोगोंकी भी यही धारणा है, परन्तु वास्तवमें श्रीकृष्ण मैया यशोदाके पुत्र हैं और वे ही उनकी वास्तविक जननी हैं।

'यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिर'—यदुवंशके सदस्य भी द्वारकाधीश श्रीकृष्णके निजजन ही हैं, क्योंकि वे श्रीकृष्णके पार्षद हैं। वासुदेव-श्रीकृष्ण महाभारतके युद्धमें उपस्थित थे। उन्होंने पौण्ड्र

प्रतीत होता है कि यह श्लोक द्वारका-लीलाका वर्णन कर रहा है और वासुदेव-श्रीकृष्णके विषयमें लिखा गया है, क्योंकि इसमें अर्जुन, भीम और अन्य परिकरोंका श्रीकृष्णकी भुजाओंके रूपमें वर्णन किया गया है। परन्तु यदि इसका गूढ़ अर्थ देखा जाये तो हम पायेंगे कि इसमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी महिमाका ही वर्णन है। वृन्दावनमें श्रीकृष्णने पूतना और अन्य दैत्योंका स्वयं अपने हाथोंसे वध किया। इससे भी कहीं अधिक श्रीकृष्णने वृन्दावनमें श्रीराधाजी और अन्य गोपियोंके विरहरूपी विकराल दैत्यका वध किया।

'स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां'—वृन्दावनकी समस्त विपत्तियों और क्लेशोंको श्रीकृष्ण केवलमात्र अपनी मनोहारी मन्द मुसकान और बाँसुरीकी तानके द्वारा ही हर लेते थे। व्रजवासियोंका वास्तविक दुःख क्या है? उनके लिए

श्रीकृष्णका विरह ही उनका परम दुःख है और इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य किसी दुःखका भान भी नहीं रहता है।

इस श्लोकमें गोकु

रासलीला और अन्य व्रजकी लीलाओंका समावेश है। 'वर्धयन् कामदेवम्'—यहाँ कामदेवका अर्थ इस जगत्‌की काम वासना नहीं, अपितु आप्रकृत काम अर्थात् निस्वार्थ शुद्ध प्रेम है। वह प्रेम भी साधारण प्रेम न होकर उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव तक पहुँचनेवाला प्रेम है। गोपियाँ श्रीकृष्णसे कहती हैं—"आप वही कामदेव हैं।" इस प्रकार सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्णकी समस्त लीलाओंको एक ही श्लोकमें समाहितकर श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधिकाके भावमें विभावित होकर श्रीजगन्नाथदेवको साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके रूपमें दर्शनकर उन्हें प्रणाम करते हुए प्रार्थना कर रहे हैं। श्रीकृष्णकी लीलाओंमें सर्वश्रेष्ठ व्रजकी लीलाएँ हैं। इन व्रजकी लीलाओंमें भी सर्वश्रेष्ठ रासलीला है, क्योंकि रासलीलामें ही श्रीकृष्णका पूर्णतम माधुर्य प्रकाशित होता है। इस रासलीलामें महाभावस्वरूपा गोपियोंके भावोंके अनुरूप श्रीकृष्णका सर्वोत्तम रूप और माधुर्य साक्षात् मन्मथ-मन्मथ-कामदेवके रूपमें प्रकट होता है। अतएव उपरोक्त श्लोकमें 'व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम्' उच्चारण करनेके उपरान्त राधाभावमें विभावित श्रीमन् महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेवको 'गोपी-भर्त्तु' के नामसे पुकारने लगे।

'गोपी-भर्त्तुः' का तात्पर्य

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयो-र्दास-दासानुदासः॥

(चै॰ च॰ म॰ १३/८०)

'गोपी-भर्त्तुः' शब्द गोपियोंके साथ श्रीकृष्णके सम्बन्धको प्रकाशित करता है। इसका अर्थ है—'जो गोपियोंके सर्वाधिक प्रिय हो' अथवा 'जो सदैव गोपियोंके वशमें रहे।' अन्तमें श्रीमन् महाप्रभुने इस प्रकार कहा है—"मैं श्रीकृष्णके दासके दासका दास बननेकी अभिलाषा करता हूँ।"

रथ-यात्राके समय श्रीचैतन्य महाप्रभु केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु सभीके लिए ही प्रार्थना कर रहे हैं। वे स्वयं परम भगवान् हैं और वे ही 'गोपी-भर्त्तुः' हैं, परन्तु हमें किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये यह शिक्षा देनेके लिए ही वे स्वयं प्रार्थना करके दिखला रहे हैं। वे हमें हमारा वास्तविक स्वरूप बतला रहे हैं। हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं हैं और न ही हम ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी हैं। हम अपने इस शरीरसे अतीत जीवात्मा हैं, जिसका नित्य स्वभाव श्रीकृष्णकी सेवा करना है। 'जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।' जीव अपनी-अपनी रुचिके अनुसार शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच रसोंमें श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं। परन्तु श्रीकृष्णकी सर्वोत्तम सेवा गोपीभावमें ही होती है, इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीकृष्णको 'गोपी-भर्त्तु' कहकर पुकारा है।

'गोपी-भर्त्तुः' कौन हैं? वे तो सदा व्रजमें वास करनेवाले श्रीराधाकान्त, श्रीराधारमण और श्रीगोपीनाथ ही हैं। श्रीकृष्णके साथ उनकी आराध्या गोपियोंका होना अनिवार्य है। श्रीमन् महाप्रभुका भाव है—"जो श्रीकृष्ण गोपियोंकी उपासना करते हैं, हम उन्हीं श्रीकृष्णके सेवक हैं, अन्य किसी कृष्णके नहीं। हम रुक्मिणी और सत्यभामाके साथ विहार करनेवाले श्रीकृष्ण या चतुर्भुज रूपमें सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले श्रीकृष्ण अथवा उनके अन्य-अन्य अवतारोंके सेवक नहीं हैं। सम्भवतः अन्य लोग ऐसे श्रीकृष्ण या उनके अवतारोंके सेवक हो सकते हैं, परन्तु हम अर्थात् मैं (श्रीमन् महाप्रभु)

और मेरे परिकर, हम केवल 'श्रीराधाभर्त्तु-पदकमलयोर्दास-दासानुदास'—राधिकाजीके दास्यमें निष्ठ गोपी हैं। अर्थात् हम उन श्रीकृष्णके ही चरणकमलोंके दासके दास हैं, जो श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ ही विहार करते हैं तथा गोपियों और उनमें भी मुख्यतः श्रीराधाजीके वशीभूत हैं। ऐसे 'गोपी-भर्त्तुः' श्रीकृष्णके ऐकान्तिक सेवक अत्यन्त दुर्लभ हैं।"

श्रीमन् महाप्रभुके आनुगत्यमें आनेवाले भक्त स्वरूपतः श्रीराधाजीकी दासियाँ हैं, क्योंकि 'गोपी-भर्त्तुः पदकमलोयर्दास-दासानुदास' पदका प्रयोग केवल श्रीराधाजीकी दासियोंके लिए ही किया जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यह उक्ति उन लोगोंके सन्दर्भमें है, जो स्वयं श्रीमन् महाप्रभुके, श्रील रूप गोस्वामी, श्रील रघुनाथदास गोस्वामी और हमारी समस्त गुरु-परम्पराके आनुगत्यमें भक्ति कर रहे हैं। जब हमारी भक्तिरूपी लतामें प्रेमभक्तिरूपी पुष्प, पल्लव और फल प्रस्फु

अनुभव कर सकेंगे। यही हमारे जीवनका प्रमुख और एकमात्र लक्ष्य है।

भावावेशमें निमग्न होनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेवका नाम भी उच्चारण नहीं कर पा रहे थे। वे केवल—"जज, गग!, जज, गग!" ही बोल पा रहे थे। उनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी और उनका हृदय विगलित हो रहा था। कोई परम रसिक भक्त ही इस स्थितिका अनुभव कर सकता है। श्रीजगन्नाथदेवको व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके रूपमें दर्शन करनेसे श्रीमन् महाप्रभु राधाभावमें आविष्ट होकर इस प्रकार चिन्तन करने लगे—"बहुत समयके पश्चात् मैं अपने उन प्राण-प्रियतमसे मिल रही हूँ, जिनके विरहकी अग्निमें मैं अब तक झुलस रही थी।" श्रीचैतन्य महाप्रभुके भावोंको जानकर श्रीस्वरूप दामोदरने उनके भावोंके अनुरूप एक गीत गाना आरम्भ किया—

"सेई त' पराणनाथ पाईनु
जाहा लागि मदन-दहने झुरि गेनु।"
(चै॰ च॰ म॰ १३/११३)

"उसी प्राणनाथ श्रीकृष्णको मैंने पा लिया है, जिनकी कामाग्निमें मैं जली जा रही थी।"

श्रीमन् महाप्रभुके गूढ़ भावोंको समझनेके लिए ग्रन्थराज श्रीमद्भागवतका आश्रय

श्रीमन् महाप्रभुने श्रील स्वरूप दामोदरके मुखसे जैसे ही इस गीतको सुना, उसी समय श्रीकृष्ण द्वारा व्रजमें की गयी सभी लीलायें क्रमशः उनके मानस पटलपर चित्रित होने लगी। वे प्रेमाविष्ट होकर व्रजके भावोंमें डूब गये तथा उन्हें बाह्य स्मृति तक भी न रही। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने स्वरचित श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीमन् महाप्रभुकी आन्तरिक स्थितिके विषयमें इङ्गितमात्र दिया है। राधाभाव विभावित श्रीमन् महाप्रभुके अप्राकृत भावोंको समझनेके लिए श्रीमद्भागवतका आश्रय लेना होगा, क्योंकि रथ-यात्राका इतिहास और उसका निगूढ़ अर्थ श्रीमद्भागवतमें ही दिया गया है। ग्यारह वर्षकी आयुमें ही श्रीकृष्ण वृन्दावन छोड़कर पहले मथुरा चले गये और कु
बार-बार मथुरापर आक्रमण किये जानेपर मथुरावासियोंकी रक्षाके लिए एक ही रातमें उन सबको विश्वकर्माके द्वारा नवनिर्मित द्वारकामें स्थान्तरित कर दिया।

श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेसे समस्त व्रजवासी उनके विरहके महासागरमें डूब गये। यशोदा मैया, नन्दबाबा, अन्य सभी वात्सल्यभावयुक्त गोप, गोपियाँ, श्रीकृष्णके सखा और उनकी प्राणवल्लभा गोपियाँ सभी श्रीकृष्णको स्मरण करके दिन-रात रोते रहते। व्रजके सभी गौएँ-बछड़े, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग उदास हो गये। वृन्दावनके वृक्ष-लताएँ, नदी-सरोवर, झरने आदि भी श्रीकृष्ण विरहमें सूखने लगे।

श्रीकृष्णका उद्धवको भेजना

मथुरामें श्रीकृष्ण भी अपनी प्राणवल्लभा गोपियों और अपने माता–पिताके प्रेममें व्याकु
कोई भी नहीं था, जो श्रीकृष्णको सान्त्वना दे सकता। व्रजमें गोपियाँ परस्पर मिलती थीं और एक–दूसरेको अपनी विरह–पीड़ा बतलाकर अपना विरह–ताप कु
दुःखको परस्पर बाँट लेती थीं। वहाँ ललिताजी राधाजीसे कहती—“हे सखी! इतनी अधीर मत होओ, श्रीकृष्ण कहीं दूर नहीं हैं, तुम्हारे हृदयमें ही तो हैं।” ऐसी और भी बातें कहकर उन्हें सान्त्वना देती थीं, उनका दुःख बाँट लेती थीं और उनके साथ मिलकर रोती थीं। किन्तु मथुरामें श्रीकृष्णके साथ ऐसा कोई नहीं था, जो उनके साथ रो ले। वहाँ गोपियोंके सम्बन्धमें कु
दुःख बाँटनेवाला कोई भी नहीं था। इसलिए श्रीकृष्णने अपने सखा और मन्त्री उद्धवजीको व्रजमें भेजनेका विचार किया जिससे कि “उद्धवजी पिता–माता और विशेषतः प्राणप्रिय गोपियोंको सान्त्वना दें और वहाँ गोपियोंकी कृपासे प्रेमका कु
पाठशालामें प्रेमका पाठ पढ़कर मथुरामें लौट आयेगा, तब मैं उसके साथ बैठकर अपने हृदयकी बातें कहकर अपने विरहके तापको दूर कर सकूँगा।”

श्रीकृष्ण जब ऐसा विचार कर रहे थे कि तभी उद्धवजी उनके समीप आये। श्रीकृष्णने उद्धवजीका हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा—“हे उद्धव! तुम शीघ्र ही व्रजमें जाओ। वहाँ मेरे माता–पिता और सभी व्रजवासी मेरे वियोगमें तड़फ रहे हैं, परन्तु गोपियोंमें तो विरहकी चरमसीमा है। इसलिए तुम माता–पिताको तो सान्त्वना देना और गोपियोंको मेरा यह सन्देशमात्र सुनाना। तुम अपने शब्दोंमें माता–पिताको कु
सान्त्वना दे सकते हो, परन्तु गोपियाँ तुम्हारी सान्त्वनाके

प्रभावसे अतीत हैं। तुम्हारे अपने प्रयाससे उनकी विरह अग्नि और अधिक भड़क उठेगी, इसलिए उन्हें केवल मेरा सन्देश ही सुनाना, जिससे उनका विरह-ताप कु
होगा।"

यह सुनकर उद्धवजी कु
बोले—"आपके बिना इतने दिन अन्यत्र कहीं रहना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं आपके बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता।" श्रीकृष्णने कहा—"चिन्ता मत करो, मैं थोड़े ही यहाँ मथुरामें हूँ। मैं तो पूर्ण रूपसे व्रजमें ही हूँ, केवल मेरे हृदयका एक अंशमात्र मथुरामें है। जब तुम व्रजमें जाओगे, तो देखोगे कि मैं सम्पूर्ण रूपसे व्रजमें ही हूँ और यहाँ तो केवल आंशिक रूपसे रहता हूँ।"

इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णने उद्धवजीको व्रजमें जानेके लिए तैयार किया और उनके जानेके लिए कंस द्वारा व्यवहार किया जानेवाला सोनेका रथ मँगवाया। तब श्रीकृष्णने अपनी माला और आभूषण आदि उन्हें पहना दिये। उद्धवजी देखनेमें श्रीकृष्ण जैसे ही थे। उनका साँवला रङ्ग, अवस्था, देह और भाषा भी श्रीकृष्णके समान थी और गुण भी श्रीकृष्ण जैसे ही थे।

श्रीकृष्णका सन्देश लेकर उद्धवजी व्रजकी ओर चल दिये। वे जब व्रजमें पहुँचे, तो सायंकालका समय हो गया था। उद्धवजीने देखा कि गौएँ वनसे लौट रही हैं। गैयाओंके खुरोंसे आकाशमें इतनी धूल उड़ रही है कि चारों ओर वातावरण धूलिमय हो गया, इस कारण किसीने उद्धवजीको व्रजमें आते नहीं देखा।

इधर श्रीकृष्णने सोचा कि—"उद्धव व्रजमें जा तो रहा है, किन्तु समझ रहा है कि मैं वहाँ नहीं हूँ। परन्तु जब मैं व्रजमें था, तब सभी व्रजवासी मेरे प्रेममें विभोर रहते थे। गौएँ, बछड़े, सखा, माता-पिता और गोपियाँ—सभी बड़े

आनन्दित और मेरे प्रेममें तन्मय रहते थे और वहाँ एक अपूर्व उल्लास छाया रहता था? मैं यदि इस प्रकाशको उद्धवको नहीं दिखलाऊँगा, तो वह 'व्रज क्या है'?" कदापि नहीं समझेगा। जैसे ही श्रीकृष्णने यह इच्छा की, उनकी अघटन-घटन पटीयसी योगमाया शक्तिने एक लीला की और उद्धवजीकी आँखोंके सामने एक अद्भुत दृश्य प्रकट कर दिया।

उद्धवजीने देखा कि अत्यन्त सुन्दर श्वेत और काले असंख्य बछड़े इधर-उधर फु
इतने भरे हुए हैं कि मानो पृथ्वीको छू लेंगे और उनसे दूध चुचुआ रहा है। गौएँ श्रीकृष्णकी वात्सल्यवती माताएँ हैं और उन्हें देखे बिना अपने बछड़ोंको भी दूध नहीं पीने दे रही हैं।

चारों ओर प्रौढ़ा गोपियाँ दधि मन्थन कर रही हैं और दधि-मन्थन करते समय वे श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण करती हुई गीत गा रही हैं—"गोविन्द-दामोदर-माधवेति, गोविन्द-दामोदर-माधवेति"। मन्थन करते हुए उनके हाथोंकी चूड़ियाँ बज रही हैं और मटकीमें चलती मथानीसे ध्वनि निकल रही है—'धिक्-तां, धिक्-तां', मानो वह ध्वनि कह रही हो कि जो श्रीकृष्णका भजन नहीं करते हैं, उनके जीवनको धिक्कार है।

उद्धवजीने देखा कि सर्वत्र ही सुगन्धित घीके प्रदीप जल रहे है और उनसे आँखोंको सुहानेवाला धीमा-धीमा प्रकाश निकल रहा है। मन्द-मन्द समीर पुष्पोंकी मधुर सुगन्धको सर्वत्र फैला रही है। पुष्पोंपर मँडराते भँवरोंकी गुञ्जार कामदेवके शङ्खसे आ रही मधुर ध्वनिके समान प्रतीत हो रही है। कोयल और अन्य पक्षी सर्वत्र गान कर रहे हैं और मयूर नृत्य करते हुए 'के-का, के-का' की ध्वनि कर रहे हैं। श्रीकृष्णके सखा "अरे कन्हैया कहाँ हो? अरे कन्हैया

कहाँ हो? कन्हैयाकी जय हो, कन्हैयाकी जय हो” कहते हुए उछल-कूद करते हुए आ रहे हैं।

इस प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णके व्रजमें रहते समयकी एक झलक पाकर कृतार्थ हो गये। उन्हें यह विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण अभी भी व्रजमें ही सम्पूर्ण रूपसे अवस्थित हैं, मथुरामें तो वे एक अंशमें ही विराजमान हैं। अब वे नन्दभवनके द्वारपर पहुँचे और अपना रथ वहाँ खड़ा कर दिया।

उद्धवजीके द्वारा नन्दबाबाको सान्त्वना देनेका प्रयास

जब नन्दबाबाने सुना कि द्वारपर उद्धव आया है, तो उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे अन्दर ले जाकर बैठाया। नन्दबाबाने सोचा कि घर आये अतिथिको अवश्य ही कु
खिलाया चाहिये। किन्तु जब उन्होंने घरमें देखा, तो खानेके लिए कु
था और दूध काढ़नेवाला भी कोई नहीं था, इसलिए दधि-मन्थन भी नहीं होता था। किसके लिए हो? जबसे श्रीकृष्ण मथुरा चले गये, नन्दभवनकी रसोईके बर्तन उल्टे पड़े हुए थे और आँगनमें कभी झाड़ू भी नहीं लगा था। यशोदा मैया तो सब समय श्रीकृष्णके विरहमें रोती-तड़फती रहती थीं। अतएव वे कैसे कु
जाल बुन लिया था। नन्दबाबाका भण्डार जो सदा भरा रहता था, अब उसकी देख-रेख करनेवाला भी कोई नहीं थी, क्योंकि कृष्णके मथुरा जानेसे उन्हें भण्डारकी कोई जरूरत ही नहीं रही। इसलिए नन्दबाबाने गाँवके अन्तिम छोरमें रहनेवाले एक ब्राह्मणको सन्देश भिजवाया कि कृष्णका प्यारा सखा उद्धव आया है, कु
ब्राह्मणने खीर बनायी, किन्तु उसके घरमें भी शक्कर नहीं थी, अतः वे बिना शक्करके ही खीर बनाकर लाया।

उद्धवजीको भूख लगी थी, इसलिए उन्होंने उस खीरको बड़े प्रेमके साथ खाया। फिर नन्दबाबाने अपने सेवकोंसे उनका पाद सम्वाहन करवाया। जब उद्धवजी थोड़ा विश्राम कर चुके थे तो नन्दबाबा चाहते थे कि वे अपने लाला कृष्णके विषयमें उनसे कु
उनका गला भर आता, आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती। इसलिए कु
प्यारे उद्धव! मेरा सखा वसुदेव बहुत सौभाग्यशाली है, वह कु
चुका है, इसलिए जो यदुवंशी कंसके भयसे दूसरे राज्योंमें जा छिपे थे, वे अब निर्भय होकर मथुरा लौट रहे हैं न?"

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन्।
गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम्॥
(श्रीमद्भा॰ १०/४६/१८)

तब नन्दबाबाने बहुत कठिनाईसे फिर पूछा—"कृष्णकी मैया उसके विरहमें रो-रोकर अन्धी हो गयी है, क्या हमारा लाला उसे कभी स्मरण करता है? कृष्णकी मैयाने उसे कितना लाड-प्यार किया है, वह कृष्णके बिना एक पल भी नहीं रह सकती है, ऐसी मैयाको क्या कभी कृष्ण स्मरण करता है? यशोदाकी सखियाँ कृष्णको अपना पुत्र ही मानती हैं, उसे अपने पुत्रोंसे बढ़कर प्रेम करती हैं। जब कृष्ण गोचारण करके लौटता था, तो वे पहले कृष्णकी आरती उतारती थीं, उसकी बलैयाँ लेती थीं और फिर अपने पुत्रोंकी। यशोदाकी सखियाँ कृष्णको अपने घरोंमें बुलाकर खिलाती-पिलाती थीं और कृष्णका भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार था। क्या कृष्ण कभी ऐसे सुहृदोंका स्मरण करता है? क्या कभी उन सखाओंका स्मरण करता है, जिनके साथ वह कभी यमुनाके तटपर, कभी गोवर्द्धनमें, व्रजमें सर्वत्र खेलता था? और जो कृष्णको एक क्षण भी नहीं देखनेसे

विरहमें तड़फने लगती थी, क्या श्रीकृष्ण उन राधिका ललिता, विशाखा आदि सखियोंको स्मरण करता है? ये सखियाँ बचपनसे ही कृष्णको प्राणोंसे भी कोटि-गुणा अधिक प्रेम करती हैं। अरे उद्धव! इन व्रजवासियोंकी तो बात ही क्या, यहाँकी गौएँ भी कृष्णको अपने बछड़ोंसे अधिक प्रेम करती हैं। व्रजके वृक्ष, लता आदि पर्वत (गोवर्धन), नदियाँ, झरने, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि भी कृष्णसे प्रेम करते हैं। समस्त व्रज ही कृष्णके विरहमें क्षुब्ध है। ऐसे व्रजको क्या वह कभी स्मरण करता है। उद्धव, क्या कृष्ण एक बार फिर व्रजमें आयेगा?"

उद्धवजी बोले—"बाबा! आप रोइये मत। कृष्णने व्रजमें लौटनेकी प्रतिज्ञा की है, इसलिए वह अवश्य, अवश्य, अवश्य ही आयेगा।"

नन्दबाबा कृष्णको स्मरणकर रोते हुए कहने लगे—"अहो! कृष्ण कितना सुन्दर है? तिल फूल जैसी उसकी नासिका कितनी सुन्दर है? जब वह तिरछी चितवनसे देखता है तो कितना सुन्दर और निराला लगता है। उसके कपोल कितने मधुर और सुन्दर हैं। जब वह मुस्कराता है तो उसके कपोलोंके बीचमें एक गड्ढा पड़ जाता है जिससे उसका सौन्दर्य और निखर जाता है। उसकी मुस्कानपर तो मानो सारा विश्व ही उसके चरणोंमें अपना सब कु
कर देता है।"

इस प्रकार कृष्णको स्मरण करते-करते नन्दबाबा व्याकु
होकर रोने लगे और उनका कण्ठ भी रुँध गया।

उद्धवजीने कहा—"कृष्णके प्रति आपका अनुराग परम धन्य है। मैंने अनेक लोगोंमें कृष्णके प्रति अनुराग देखा तो है, किन्तु आप जैसा अनुराग कहीं भी नहीं देखा। आप चिन्ता मत करें, जब कृष्ण प्रतिज्ञा करके गये है कि 'लौटकर अवश्य आऊँगा', तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे

अवश्य ही लौटेंगे। कु
विलम्ब हो रहा है, किन्तु वे अवश्य ही फिर व्रजमें आयेंगे।"

नन्दबाबा प्रेममें विकल होकर पुनः कहने लगे—"हाँ, कृष्ण हम सबका रक्षक था। जब-जब व्रजपर विपत्तियाँ आयीं, कृष्णने हमारी रक्षा की थी। एक बार सखाओं और बछड़ोंको बचानेके लिए उसने दावाग्निको पान कर लिया था। कृष्णके कहनेसे जब हमने इन्द्रकी पूजा बन्दकर गोवर्धनकी पूजा की, तब इन्द्रने क्रोधमें भरकर कृष्णके साथ सभी व्रजवासियोंको जलमें डुबो देनेकी ठानी और प्रलयकालीन मेघोंको व्रजमें मूसलाधार वर्षा करनेका आदेश दिया। सात दिन और सात रात तक लगातार मूसलाधार वर्षा हुई और कृष्णने खेल-ही-खेलमें गोवर्धनको छत्रकी भाँति उठाकर गोप, गोपियों, गायों, बछड़ों आदि समस्त व्रजवासियोंको उसके नीचे बुला लिया। कृष्णने सात दिन तक गोवर्धनको उठाये रखा और सभीकी रक्षा की। वृषभासुर बैलका रूप धारणकर व्रजमें आया और कृष्णने उसे भी मार डाला। केशी, अघासुर, बकासुर आदि दैत्य व्रजवासियोंकी मृत्यु बनकर आये, किन्तु कृष्णने उन दैत्योंको मारकर व्रजवासियोंकी रक्षा की। और अब हम व्रजवासी कृष्णके विरहके महासागरमें डूबते जा रहे हैं और यदि इस समय कृष्णने आकर हमारी रक्षा नहीं की तो समस्त व्रज विरहके महासागरमें डूबकर प्राण त्याग देगा।"

इस प्रकार श्रीकृष्णकी सुन्दरता, मधुरता, मधुर मुस्कान, मीठी बोली और मधुर गमन-भङ्गी, वीरता, प्रतिभा आदिका स्मरण करते-करते नन्दबाबाकी समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और प्रेममें विह्वल होकर वे मूर्च्छित हो गये।

उद्धवजी सोचने लगे—"अहो! यशोदा मैया और नन्दबाबाका श्रीकृष्णके प्रति कितना अद्भुत प्रेम है? ये नहीं जानते हैं

कि श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं और ये उन्हें अपना पुत्र मानकर मोहित हो रहे हैं। मैं इन्हें कैसे सान्त्वना दूँ?"

उद्धवजीने नन्दबाबाको उठाया और धीरे-धीरे उनकी चेतना फिर लौट आयी। नन्दबाबा कहने लगे—"कृष्णको भूलनेके लिए मैं घरसे बाहर निकल जाता हूँ। किन्तु व्रजमें सर्वत्र ही कृष्णके नन्हें-नन्हें कोमल चरणोंके चिह्न हैं। वह यमुनाके तटपर और व्रजमें सर्वत्र ही खेला करता था। ऐसा कोई वृक्ष नहीं है, गिरिराजमें कोई कन्दरा, कु
वह नहीं खेलता था। मैं व्रजमें जहाँ भी जाता हूँ, प्रत्येक स्थानमें उसकी लीलाकी ही स्फूर्ति होती है। उसके खेलने, हँसने, बोलने इत्यादिका स्मरण होता है।" इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन करते-करते नन्दबाबा प्रेममें पुनः विह्वल होकर मौन हो गये।

उद्धवजी सोचने लगे—"मैं तो इन्हें सान्त्वना देने आया था, किन्तु ये तो कृष्णके लिए विलाप करते-करते तड़फ रहे हैं। संसारमें वही परम सौभाग्यवान है, जो श्रीकृष्णका चिन्तन-मनन करते हैं और श्रीकृष्णका स्मरणकर उनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु धारा प्रवाहित होती है। ये भावभक्तिके लक्षण हैं। नन्दबाबा यही तो कर रहे हैं, श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए उनके लिए रो रहे हैं। फिर भी मुझे उन्हें कु
सान्त्वना तो देनी ही चाहिये। यदि कोई व्यक्ति रो रहा हो तो उसे सान्त्वना देते हुए कहा जाता है कि आप रोइये मत। परन्तु मेरे लिए विडम्बना है कि मैं ऐसा भी नहीं कर सकता, मैं कैसे कहूँ कि नन्दबाबा आप कृष्णके लिए मत रोइये? यदि मैं ऐसा कहता हूँ तो शास्त्रके अनुसार यह पापमय कार्य है। श्रीकृष्णने मुझे कहा था कि व्रजमें मेरे माता-पिताको सान्त्वना दे आना, किन्तु मैं इन्हें कैसे सान्त्वना दूँ? किसीको सान्त्वना देनी हो तो हमारे भाव
कु

आँखोंमें भी आँसू आ जाने चाहिये। नन्दबाबाका ऐसा तीव्र विरह है कि इनके सामने कोई भी रोये बिना नहीं रह सकता है। किन्तु मैं बहुत ही दुर्भागा हूँ, क्योंकि मुझमें गोपों और गोपियों जैसा कृष्णप्रेम नहीं है, इसलिए मुझे तो रोना भी नहीं आ रहा। इस संसारमें मनुष्य जन्म लेनेका यही महाफल है कि व्यक्ति 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर विरहमें उनके लिए रोये। यदि मैं नन्दबाबासे कहूँ कि 'बाबा आप रोइये, खूब रोइये' तो इसके द्वारा कृष्णकी आज्ञाका पालन—सान्तवना देना नहीं होगा। सान्त्वना देनेके लिए आवश्यक है कि जिस विषयके लिए कोई व्यक्ति रो रहा हो, उसके मनको उस विषयसे हटाकर किसी अन्य विषयमें ले जाया जायें। परन्तु मैं यह भी नहीं कर सकता, क्योंकि इनका मन तो श्रीकृष्णमें ही लगा हुआ है। अतएव मैं कैसे कहूँ कि आप अपने मनको कृष्णसे हटाकर अन्य विषयकी चिन्ता करें। यदि कोई श्रीकृष्णमें तन्मय हो जाये तो यही उसके जीवनका परम सौभाग्य है। सचमुचमें नन्दबाबा बहुत महान हैं और इनका जीवन ही धन्य है।"

बहुत सोच विचारके बाद उद्धवजी नन्दबाबासे बोले—'युवां श्लाघ्यतमौ (श्रीमद्भा॰ १०/४६/३०)'—इस जगत्में यहाँ तक कि समस्त विश्व ब्रह्माण्डमें आप और यशोदा मैया ही परम सौभाग्यवान हैं। आप दोनोंके इस भाग्यको जगत्का कोई भी प्राणी स्पर्श नहीं कर सकता, क्योंकि आप लोगोंमें कृष्णके लिए बहुत अधिक अनुराग है।

यह सुनते ही नन्दबाबा उद्धवसे बोले—"अरे! क्या कहा, क्या कहा? तुम मुझे सौभाग्यवान कह रहे हो? उद्धव! मुझे तुम्हारी बुद्धिपर रोना आता है। मैं तो सोचता था कि तुम कृष्णके साथ रहकर चालाक चतुर हो गये होंगे। परन्तु तुम्हारी बातोंसे लगता है कि तुम्हारे दूधके दाँत भी अभी टूटे नहीं। अरे! इस संसारमें जो सबसे बड़ा दुर्भागा है, उसे

तुम सौभाग्यवान कह रहे हो। कु
तो। तुम कह रहे हो कि कृष्ण अखिल जगत्‌का गुरु, नारायण है और मैं उसे अपना पुत्र मानकर रो रहा हूँ। पहले मैं यही समझता था कि कृष्ण मेरा पुत्र ही है, इसलिए उसके विरहमें विकल होकर रो रहा था। मैं चाहता हूँ कि मेरे प्राण निकल जायें, परन्तु ये निकलते ही नहीं। ब्रह्माजीने मेरे हृदयको वज्रके समान कठोर बनाया है। पिता तो जगत्‌में एकमात्र महाराज दशरथ ही थे, जिन्होंने अपने पुत्रके वियोगमें 'हा राम! हा राम!' कहते हुए अपने प्राण छोड़ दिये। मैं तो पुत्रके वियोगमें मर भी नहीं रहा हूँ। इसलिए मैं ऐसा महादुर्भागा व्यक्ति हूँ, कि मैंने नारायणको भी अपने पुत्रके रूपमें प्राप्त करके अपनी निष्ठुरताके कारण उसे खो दिया है। भगवान् तो वहीं रहते हैं, जहाँ कोई उन्हें प्रेम करे। लगता है कि मुझमें प्रेम नहीं है, इसीलिए कृष्ण मुझे छोड़कर मथुरा चला गया है।"

उद्धवजी सोचने लगे—"अब मैं क्या करूँ? जिसे नन्दबाबा पुत्र मान रहे हैं, वह उनका पुत्र नहीं है। 'विश्वस्य च बीजयोनि (श्रीमद्भा॰ १०/४६/३१)'—विश्वका बीज पुरुष है और प्रकृति योनि है, दोनोंसे जगत्‌की सृष्टि होती है। ये उस श्रीकृष्णको अपना पुत्र मान रहे हैं, जो बीजरूपी पुरुष और प्रकृतिके भी परम पुरुष हैं। 'रामो मुकु
१०/४६/३१)'—बलराम और श्रीकृष्ण, जिन्हें ये पुत्र मानकर तड़प रहे हैं, वे तो सर्वत्र व्याप्त हैं, इसलिए उन्हें विश्व योनि कहा गया है। सभी उनके भीतरमें हैं और कहीं भी उनका अभाव नहीं है। जगत्‌में लोग मोहमें पड़कर ही रोते हैं और मोह तो अज्ञानसे उत्पन्न होता है। किन्तु तत्त्वज्ञान द्वारा अज्ञानका नाश होते ही मोह दूर हो सकता है। यदि इन्हें यह ज्ञान हो जाये कि श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं, तो इनका मोह भङ्ग हो जायेगा और विरहकी तड़फन भी दूर हो जायेगी।"

ऐसा विचारकर उद्धवजी बोले—"बाबा! 'नारायणोऽखिलगुरौ (श्रीमद्भा॰ १०/४६/३०)'—श्रीकृष्ण नारायण हैं, समस्त जगत्के गुरु हैं। सभी उनके पुत्र हैं और आप उन्हें अपना पुत्र मानकर रो रहे हैं। आपका पुत्र तो पुरुष प्रधान है। पुराणों और वेदोंका भी यह ही प्रतिपाद्य तत्त्व है, समस्त कारणोंका भी कारण है, विश्वकी योनि है। हे महात्मन्! हे नन्दबाबा! ऐसा समझिये कि ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहाँपर श्रीकृष्ण नहीं हैं।"

नन्दबाबा अब तक चुप थे और उनकी आँखोंसे आँसू निकलना भी कु

ब्रह्मज्ञान सुनकर पुनः तड़फकर कहने लगे—"अरे! उद्धव, तुम कृष्णको भगवान् कह रहे हो। किन्तु वह तो थोड़ी-सी छाछके लिए, मक्खन और रोटीके लिए कैसे मचल जाता था, कृष्णको तो क्षण-क्षणमें भूख लगती थी वह दूसरोंके घरमें चोरी करके मक्खन खाता था तथा बात-बातमें झूठ बोलता था और क्रोध करता था। ऐसे कृष्णको तू भगवान् कह रहा है। अरे भगवान् तो वे हैं, जिन्हें भूख-प्यास नहीं लगती, जो जन्म-मरणसे अतीत हैं और जिनमें क्रोध, राग, द्वेष आदि कु

आता है।"

ऐसा सुनते ही उद्धवजी सोचने लगे कि उनसे भूल हो गयी है, उन्हें श्रीकृष्णको नारायण नहीं कहना चाहिये था, क्योंकि इससे तो नन्दबाबाका विरह-ताप और बढ़ गया। उद्धवजी सोच नहीं पा रहे थे कि वे नन्दबाबा और यशोदा मैयाको कैसे सान्त्वना दें। मानो यशोदा मैया और नन्दबाबाका प्रेम हिमालय पर्वतके समान उन्नत है और उद्धवजी सिर उठाकर उसके शिखरकी ऊँचाईका अनुमान लगानेके लिए ऊपर देखने लगे तो उनकी (ब्रह्मज्ञानरूपी) पगड़ी नीचे गिर पड़ी। तब अन्य कोई उपाय न देखकर वे बोले—"बाबा!

इतने व्याकु
(श्रीमद्भा॰ १०/४६/३४)'—वह सत्य सङ्कल्प है, यदि वह लौटनेका वचन देकर गया है, तो अवश्य ही आयेगा। बस, उसे जल्दी ही आनेवाला समझिये। इसलिए धैर्य धारण कीजिये। 'प्रियं विधास्यते (श्रीमद्भा॰ १०/४६/३४)'—यशोदा मैयाकी, आपकी और समस्त व्रजवासियोंकी दुःखोंसे रक्षा करनेवाला कृष्ण अवश्य ही आयेगा, आप विकल मत होइये।"

ऐसा कहते-सुनते, समझाते-बुझाते और रोते-तड़फते सारी रात बीत गयी। प्रातःकालमें उद्धवजी नन्दगाँवके निकट स्थित सरोवरमें, जिसका नाम आजकल कृष्णकु
करने गये। वे स्नान करके आह्निक करने बैठे, परन्तु आज उनका मन उसमें नहीं लग रहा था। नन्दबाबाका प्रेममय कलेवर और उनके भाव बार-बार उद्धवजीको स्मरण आने लगे और वे सोचने लगे कि मुझे कृष्णके लिए रोना भी नहीं आता है, परन्तु यशोदा मैया और नन्दबाबा श्रीकृष्णके लिए ऐसे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं कि उनका रोना कम ही नहीं होता।

उद्धवजीके द्वारा गोपियोंके महाभावका दर्शन

उसी क्षण योगमायाकी कृपासे उद्धवजीने कु
एक कदम्बका वन देखा। उसके थोड़ा निकट जानेपर उन्होंने देखा कि वहाँ करोड़ों गोपियाँ उदास बैठी थीं, उनके चेहरे फीके पड़ गये थे और उनके वस्त्र मैले हो गये थे। उनके आँसुओंसे उनके वस्त्र भीगे हुए थे और भीगे हुए वस्त्रोंपर व्रजकी धूल लिपटी हुईं थीं। गोपियाँ अपने वस्त्र इसलिए साफ नहीं करती थीं, क्योंकि उन वस्त्रोंमें श्रीकृष्णसम्बन्धी आँसू थे। वे गोपियाँ विरहमें विह्वल होकर मरणासन्न थीं। तभी एक गोपी कहने लगी—"अरे सखी! मैंने आज सुबह

सोनेका एक रथ देखा। क्या तुम्हें पता है कि वह रथ यहाँ किसलिए आया और उस रथमें कौन आया है?" यह सुनकर दूसरी गोपी बोली—"कंसको मारकर कृष्ण मथुराधीश हो गये हैं उन्होंने अपने सेवकको सोनेके रथपर बैठाकर यहाँ अपने पिता-माताको और व्रजवासियोंको अपना वैभव दिखलानेके लिए भेजा है।" इतनेमें तीसरीने कहा—"मैं जानती हूँ कि यह रथ किसलिए आया है। मथुरामें कंस मारा गया है न और आजके दिन उसका पिण्ड देना है। तर्पणके लिए शायद वहाँ पिण्ड नहीं है, किन्तु व्रजमें तो बहुत कु मथुरावासियोंने यह सोचा होगा कि कृष्णके विरहमें हम समस्त गोपियाँ, और सभी व्रजवासी मर गये होंगे, इसलिए हमारे हृत् पिण्डको लेनेके लिए ही इसे यहाँ भेजा होगा।" गोपियोंकी इन बातोंको सुनकर उद्धवजी स्तब्ध रह गये। उन्होंने सोचा—"मुझे इन्हें सान्त्वना देनेके लिए इस सोनेके रथपर नहीं आना चाहिये था। हे पृथ्वीदेवी! आप फट जाती तो मैं उसमें समा जाता।"

उसी समय एक गोपीकी दृष्टि पासमें खड़े उद्धवपर पड़ी, उन्हें देखते ही उस गोपीने उद्धवकी ओर इशारा करते हुए अपनी सखीसे पूछा—"आखिर यह है कौन?" उत्तरमें एक सखी बोली—"मैं जानती हूँ कि यह कृष्णका अनुचर उद्धव है।" तब एक और अन्य सखीने पूछा—"तू कैसे जानती है?" इसपर पहलेवाली सखी बोली—"मेरी नाक अभ्रान्त है, यह जो वैजयन्ती माला पहनकर आया है, उस मालाकी अपनी सुगन्धके साथ-साथमें उसमेंसे श्रीकृष्णके अङ्गोंकी विशेष मतवाली सुगन्ध भी तो आ रही है। अतएव इससे पता चलता है कि श्रीकृष्णने ही इसे अपनी माला पहनाकर यहाँ भेजा है।"

उद्धवको श्रीकृष्णका अनुचर जानकर गोपियोंने उन्हें घेर लिया और उनमेंसे एक गोपी कहने लगी—"हे कृष्णके

अनुचर! आप यहाँ क्यों आये हैं? हमारे पास आनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं थी। हमसे तो अब कृष्णका कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा सम्बन्ध तो माननेपर निर्भर करता है। मानो तो है, नहीं मानो तो नहीं है। हम उन्हें अपना प्राण प्रियतम मानती थीं और वे भी हमें अपनी प्रियतमा मानते थे। परन्तु अब तो सभी सम्बन्ध तोड़कर वे मथुरा चले गये। उद्धव! हम आपसे एक प्रश्न करना चाहती है। प्रेम दो प्रकारका होता है—स्वार्थपूर्ण और निःस्वार्थ प्रेम। भौंरोंका पुष्पोंसे और पुरुषोंका स्त्रियोंसे जो सम्बन्ध है—यही स्वार्थ प्रेम है। जब राजा राज्यकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है, तो प्रजा उसका साथ छोड़ देती है। जिस वृक्षपर फल-फूल नहीं रहते, पक्षी उसे छोड़ जाते हैं। वनमें आग लगते ही पशु वहाँसे भाग खड़े होते हैं। किसी स्त्रीके हृदयमें चाहे कितना ही अनुराग क्यों न हो, जार पुरुष तो अपना काम बना लेनेके बाद पलटकर भी उसे नहीं देखता है। किन्तु उद्धव! हमारा श्रीकृष्णके प्रति निःस्वार्थ प्रेम था और कृष्णका भी हमारे प्रति निःस्वार्थ प्रेम था। वह प्रेम कैसे टूट गया?" उद्धवजी यह सुनकर सिर खुजलाने लगे। एक गोपी फिर बोली—"कृष्ण तो हमें भूल गये हैं, परन्तु विडम्बना तो यह है कि हम उन्हें नहीं भूल सकतीं। अब हमसे तो उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु हाँ, वे अपने माता-पिताको कैसे भूल सकते हैं? उस सम्बन्धको तो वे तोड़ नहीं सकते, क्योंकि उनका तो शरीर ही यशोदा मैया और नन्दबाबाके रक्तसे बना है। इसलिए हे उद्धवजी! आप उधर नन्दभवनमें मैया और बाबाके ही पास जाइये।" इतना कहकर गोपियाँ श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण करते-करते स्त्री-सुलभ लज्जाको भूलकर फूट-फूटकर रोने लगीं।

तदनन्तर वे गोपियाँ उद्धवजीको और भी कु
कदम्ब वनकी एक क्यारीमें ले गयीं। वहाँ उद्धवजीने देखा

कि एक सोनेकी पुतली जैसी कोई गोपी मृत प्रायः अवस्थामें कमलके फूलोंकी शय्यापर सोयी हुई है। उसकी सखियोंने उसकी नाकके पास रुई रखकर देखा कि वह अभी भी जीवित है अथवा नहीं। तब उन्होंने जाना कि अभी प्राण निकलना कु
गोपी (श्रीराधाजी) सोयी हुई थी, वे दिव्य उन्मादमें कु प्रलाप करने लगी। उस मूर्च्छित अवस्थामें ही श्रीराधाजी श्रीकृष्णका ध्यान करने लगीं कि श्रीकृष्ण उन्हें छोड़कर मथुरा चले गये हैं। वे किसी प्रेयसीके बिना तो रह नहीं सकते, अतः वे वहाँ मथुराकी रमणियोंसे घिरे हुए उनके साथ विहार कर रहे हैं। उस उन्माद अवस्थामें भी श्रीराधाजीको मान हो गया और वे दिव्य-उन्मादमें प्रलाप करने लगीं, जिसे श्रीमद्भागवतमें 'भ्रमरगीत' कहा गया है।

काचिन्मधुकरं दृष्टवा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम्।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत॥
(श्रीमद्भा॰ १०/४७/११)

इतनेमें एक भ्रमर गुञ्जार करता हुआ श्रीराधाजीके चरणकमलोंको कमल-पुष्प समझकर मधुके लोभमें वहाँ मँडराने लगा। उसे श्रीकृष्णका दूत समझकर मानवती राधाजी कहने लगीं—"हे मधुप! हे कपटीके बन्धु! दूर हटो, दूर हटो, मेरे पाँवोंको स्पर्श मत करो। मथुराकी रमणियोंके वक्षःस्थलसे मसली हुई हमारे प्रियतमकी वनमालामें लगा हुआ पीला कु
मथुराकी मानिनी रमणियोंका ही मान भञ्जन करें। जो तुम जैसे सुरतचिह्न धारण करनेवालेको मानिनीका मान-भञ्जन करनेके लिए दूत बनाकर भेजते है, वे निश्चित ही यादवोंकी सभामें उपहासके पात्र होवेंगे।

हे मधुकर! ऐसा लगता है कि मेरे प्रियतमने तुम्हें मुझे मनानेके लिए भेजा है, क्योंकि उन्होंने अपराध किया है।

परन्तु तुम्हारे स्वामी भी तुम्हारे जैसे ही हैं। जिस प्रकार तुम एक पुष्पका रस पान करके वहाँसे उड़ जाते हो और फिर किसी दूसरे पुष्पके ऊपर जाकर उस पुष्पका रस आस्वादन करते हो। उसी प्रकार श्रीकृष्णने भी हमें एक बार, हाँ, केवल एक बार ही अपने अधरोंका अमृत पान कराया था और फिर वे हम गोपियोंको छोड़कर चले गये। यदि कहो कि तुम्हारे कहे अनुसार श्रीकृष्ण यदि धूर्त हैं, तो लक्ष्मीदेवी उनके चरणोंकी सेवा क्यों करती हैं? तो उत्तर है कि हमें लगता है लक्ष्मी निश्चय ही छलियाकी मीठी-मीठी बातोंमें आ गयी होंगी। परन्तु हे भ्रमर! हम लक्ष्मीकी भाँति इतनी सीधी नहीं हैं। तुम हमारे सामने कृष्णका गुणगान क्यों कर रहे हो? हम उस छलियेको अच्छी तरहसे जानती हैं। उसने हमसे कहा था कि वह हमारे निःस्वार्थ प्रेमका ऋण कभी भी नहीं चुका पायेगा और हमें दो दिनमें लौटकर आनेका वचन देकर मथुरासे अभी तक नहीं आया है। तुम कैसे कहते हो कि वे सत्यवादी है? तुम हमारी चापलूसी क्यों कर रहे हो? हम तो वनवासिनी हैं और हमारा कोई घर-द्वार भी नहीं हैं। हम तो उन्हींके लिए पथकी भिखारिणी हो गयी हैं। हमारे पास है ही क्या, जो तुम्हें दे सकती हैं? अरे! यदि तुम मथुरा जाकर वहाँ रहनेवाली रमणियोंका अनुनय विनय करो, तो वे तुम्हें मुँहमाँगी वस्तुएँ दे देंगी। अरे मधुकर! तू अपने मस्तकसे मेरे पैरोंको स्पर्श करनेका प्रयास मत कर। लगता है कि तेरे स्वामीने तुझे अच्छी तरहसे सिखा-पढ़ाकर भेजा है कि किस प्रकार किसी मानिनीको मनाया जाता है। परन्तु मुझे नहीं लगता कि यहाँपर कोई भी तुम्हारी बात सुनेगा। हमने अपने पति-पुत्र-बन्धु-बान्धवोंको कृष्णके लिए छोड़ दिया, परन्तु वे तो अकृतज्ञ ही निकले। इसलिए हमारी उनसे सन्धि कैसे सम्भव है?

हे कपटीके बन्धो! जरा अपने काले प्रभुके कु
गुणोंको सुनो। इसी कालेने त्रेतायुगमें निर्दयतापूर्वक वानरराज बालिको व्याधकी भाँति छिपकर मारा था। एक स्त्रीके वशीभूत होकर उसने विवाहका प्रस्ताव लेकर आयी बेचारी शूर्पणखाके नाक-कान काट करके उसे कु
ताकि उसका विवाह और कहीं कभी न हो सके। इसी कालेने वामनके रूपमें महाराज बलिके द्वारा दी गयी पूजाको स्वीकार करके मुँहमाँगी वस्तु ले करके भी उसे वरुणपाशसे बाँधकर पाताल लोकमें डाल दिया। ठीक वैसे ही जैसे काला कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवालोंको अपने अन्य साथियोंके साथ घेर लेता है और परेशान करता है। तुम्हारे काले स्वामीसे हमें क्या प्रयोजन है? यदि तुम कहते हो कि वे ऐसे ही हैं, अतः हम उन्हें भूल ही क्यों नहीं जातीं और क्यों उनकी ही चर्चा करती हैं? तो इसका उत्तर है—“हे मधुप! तुम ठीक कहते हो कि हमें उन्हें भुला देना चाहिये और सचमुच हम भी उन्हें भूलना चाहती हैं। किन्तु विडम्बना यह है कि चाहनेपर भी उनकी कथाको हम छोड़ नहीं पाती हैं।”

यह सुनकर वह भ्रमर उड़ता हुआ कहीं चला गया और कु
कहा—“हे सौम्य! क्या मेरे प्रियतमने तुम्हें मुझे मनानेके लिए यहाँ पुनः भेजा है? क्या तुम हमें वहाँ ले जाना चाहते हो? परन्तु उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी तो सदा उनके वक्षःस्थलपर ही निवास करती हैं, इसलिए हमारा निर्वाह वहाँ कैसे हो सकता है? हे मधुकर! यह बतलाओ कि हमारे प्राणप्रियतम कु
सगे-सम्बन्धियों, सखाओं, गायोंका स्मरण करते हैं? क्या वे कभी इन दासियोंको स्मरण करते हैं? क्या कभी वे अगरुके

समान दिव्य सुगन्धसे युक्त अपनी भुजाएँ हमारे सिरपर रखेंगे? क्या हमारे जीवनमें ऐसा शुभ अवसर आयेगा?"

ऐसा कहते-कहते श्रीराधाजी श्रीकृष्ण-विरहमें अधीर होकर फूट-फूटकर रोने लगीं। वे विलाप करने लगीं—

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकु

(श्रीमद्भा० १०/४७/५२)

"हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे दुःखविनाशन! हे गोविन्द! दुःखके अपार सागरमें डूबते हुए इस व्रजमण्डलका शीघ्र ही उद्धार करो। हममें प्राण धारण करनेका और सामर्थ्य नहीं है।"

उद्धवजीने देखा कि श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंके प्राण अब निकलने ही वाले हैं, इसलिए उन्होंने श्रीकृष्णका सन्देश जैसा था, वैसा ही गोपियोंको सुना दिया। इससे गोपियाँ और अधिक विरह-तापसे सन्तप्त हो गयीं। उद्धवजीके आनेके पूर्व वे सोचती थी कि श्रीकृष्णने व्रजमें लौटकर आनेका वचन दिया है। परन्तु कृष्णका सन्देश सुननेके बाद गोपियोंकी आशालता मूलसे ही उखड़ गयी, श्रीकृष्णके व्रजमें लौटनेकी उनकी रही-सही आशा भी जाती रही। उनका विरह और अधिक बढ़ गया।

उद्धवजीके द्वारा गोपियोंकी कृपाके लिए याचना

गोपियोंका कृष्णप्रेम देखकर उद्धवजीके ज्ञानका अभिमान चूर-चूर हो गया। वे सोचने लगे—"गोपियोंका प्रेम इतना उन्नत और अथाह है कि मैं उसका स्पर्श भी नहीं कर सकता। गोपियोंकी महिमाकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि मुझे उनके चरणोंकी धूलका एक कण भी मिल जाये, तो मेरा जीवन कृतार्थ हो जाये। परन्तु मैं उनकी

चरण धूलिको स्पर्श करनेके योग्य भी तो नहीं हूँ। इसलिए उन्हें दूरसे ही प्रणाम करता हूँ।"

ऐसा सोचकर उद्धवजी प्रार्थना करने लगे—

आसामहो चरणरेणु-जुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्य पथञ्च हित्वा
भेजुर्मुकु

(श्रीमद्भा० १०/४७/६१)

"मेरे लिए तो यह परम सौभाग्यकी बात होगी कि मैं इस वृन्दावनधाममें कोई झाड़ी, लता अथवा औषधि—जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ। अहो! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलिका निरन्तर सेवन करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। इनकी चरणरजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ! देखो तो जिन्हें छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन सम्बन्धियों तथा लोक, वेदकी आर्य-मर्यादाका परित्याग करके इन गोपियोंने श्रीकृष्णका परमप्रेम प्राप्त कर लिया है। औरोंकी तो बात ही क्या, भगवत्-निःश्वासरूप समस्त श्रुतियाँ भी गोपियों जैसे भगवान्के परम प्रेममय दिव्य स्वरूपको ढूँढ़ती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पातीं। किन्तु गोपियोंने तो श्रीकृष्णके प्रति परमोन्नत प्रेम पा लिया है।"

उपरोक्त वचन कहनेके उपरान्त उद्धवजी सोचने लगे—"मेरा ऐसा सौभाग्य तो हो नहीं सकता कि मैं व्रजमें तृणके रूपमें जन्म लेकर निरन्तर गोपियोंकी चरणधूलिसे अभिषिक्त हो सकूँ।" अतएव वे गोपियोंकी चरणरेणुके एक कणके लिए ही प्रार्थना करते हुए कहने लगे—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

(श्रीमद्भा० १०/४७/६३)

"मैं नन्दबाबाके व्रजकी गोपाङ्गनाओंकी चरणरेणुकी निरन्तर वन्दना करता हूँ। इन गोपियोंके द्वारा गान की गयी श्रीकृष्णकी लीलाकथाएँ त्रिभुवनको सदा-सर्वदा पवित्र करती रहेंगी।"

उद्धवजी किस गोपीके चरणकमलके एक धूलिकणकी अभिलाषा कर रहे हैं। श्रीराधाजीके चरणकमलकी धूलिके एक कण की। परन्तु वे फिर विचार करने लगे कि मैं तो इसके योग्य भी नहीं हूँ, इसलिए यदि उनकी किसी भी सखीकी चरणधूलिका एक कण भी प्राप्त हो जाये तो मेरा जन्म सार्थक हो जायेगा।

श्रीकृष्णने उद्धवजीको व्रजमें गोपियोंकी पाठशालामें जाकर प्रेमका पाठ पढ़नेके लिए भेजा था। परन्तु गोपियोंने उन्हें अयोग्य कहकर प्रेमकी पाठशालामें प्रवेश नहीं दिया। इसलिए उद्धवजीने दूरसे उस पाठशालाको प्रणाम किया और बाहरसे देखकर ही जो कु
मथुरा लौट गये।

कु

श्रीकृष्णके व्रज छोड़नेके अनेक वर्षों बाद पूर्ण सूर्यग्रहण लगा। शास्त्रोंके अनुसार ग्रहणके समय तीन बार स्नान करना चाहिये, पहला जब ग्रहण आरम्भ हो, दूसरा जब ग्रहण लग जाये और तीसरा जब ग्रहण समाप्त हो जाये। तीसरे स्नानके पश्चात् दान-दक्षिणा देनी चाहिये। भारतीय इतिहास एवं वेद-उपनिषदोंमें वर्णन है कि ग्रहण समाप्तिके समय कई राजा अपनी समस्त धन-सम्पत्ति ब्राह्मणों और गरीबोंको दान कर देते थे। वे दानवीर व्यक्ति इतना दान करते थे कि थोड़े समय बाद कोई दान लेनेवाला ही नहीं रहता था। जिन्होंने दान लिया होता था, वे भी दूसरोंको दान देने लगते थे। सभी दानदाता बन जाते थे और सभी सन्तुष्ट रहते थे। आजकल भी भारतमें कई उदारचित्त व्यक्ति हैं, जो मुक्तहस्तसे

दान देते हैं। दान देना दानदाताके लिए हितकारी होनेपर भी आजकल इस प्रथाका प्रचलन बहुत कम होता जा रहा है।

सूर्यग्रहणके अवसरपर श्रीकृष्णने देवकी-वसुदेव, अपनी सोलह हजार एक सौ आठ रानियों, सेना और सेनापतियोंके साथ कु
बनायी। श्रीकृष्णने नन्दबाबाको कु
निमन्त्रण नहीं भेजा, किन्तु उन्होंने सोचा—"बाबाको तो पता चल ही जायेगा और तब वे व्रजमें नहीं रह पायेंगे। वे और सभी व्रजवासी अपने आप ही कु

वृन्दावनमें नन्दबाबाको किसी प्रकारसे श्रीकृष्णके कु
आनेकी सूचना मिली। यह समाचार सुनते ही नन्दबाबाके आनन्दकी सीमा नहीं रही और उन्होंने समस्त व्रजवासियोंको अपने साथ लेकर श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए कु
निर्णय लिया। श्रीकृष्णसे शीघ्र ही मिलनका अवसर प्राप्त होगा—यह समाचार सुनते ही व्रजमें सर्वत्र ही आनन्दकी लहर दौड़ पड़ी। वर्षोंसे विरहाग्निमें झुलसते व्रजवासियोंको ऐसा लगा मानो अमृत वर्षण करनेवाली मेघमालाने व्रजको आच्छादित कर दिया हो। मृतप्रायः व्रजवासियोंमें नवजीवनका सञ्चार हो गया। वे सभी आनन्दमें निमग्न होकर श्रीकृष्णके लिए उनकी प्रिय वस्तुएँ एकत्रित करते हुए कु
तैयारी करने लगे। श्रीकृष्णके व्रजसे जानेके बाद व्रजके रसोईघरोंमें चूल्हे कभी नहीं जले थे, अब उन चूल्होंको गोपियोंने साफ-सुथराकर श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाले पकवान तैयार किये। सभीने सुन्दर वस्त्र धारण किये, गोपियोंने शृङ्गार किया और आभूषण पहने। उपानन्दजी और अन्य कु
व्यक्तियोंको व्रजकी देख-रेखके लिए छोड़कर सभी गोप, गोपियाँ अपनी-अपनी बैलगाड़ियोंमें बैठकर कु
चल दिये। मार्गमें वे निरन्तर श्रीकृष्णका ही स्मरण करते हुए गा रहे थे—"कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण! गोविन्द-दामोदर-माधवेति!"

उस समय तक गोपियोंको श्रीकृष्णके विरहमें शोकाकु
होकर विलाप करते-करते लगभग साठ-सत्तर वर्ष बीत चुके थे। परन्तु इतने वर्षोंके उपरान्त भी श्रीकृष्ण किशोर ही थे और गोपियाँ भी किशोरी ही थीं। इस प्रकार ये सभी कु

सूर्यग्रहणके अवसरपर नारद मुनि, व्यासदेव, गौतम, याज्ञवाल्क्य आदि हजारों-लाखों ऋषि, महर्षि, ब्रह्मवादी, आत्मज्ञानी आदि महात्मा भी कु
धर्मराज श्रीयुधिष्ठिरके साथ सभी पाण्डव, द्रौपदी, कु
भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, दुर्योधन और उसके भ्राता, कर्ण और समस्त भारतवर्षसे सभी कौरव और विश्वभरसे लोग वहाँ एकत्रित हुए। सम्पूर्ण विश्वके सभी राजा उस परम पवित्र ब्रह्मसरोवरमें स्नान करनेके लिए कु
उस समय वहाँ एक करोड़से भी अधिक व्यक्ति इकट्ठे हुए थे। वहाँ दूर-दूर तक हजारोंकी संख्यामें तम्बुओंकी कतारें लग गयी थीं।

बहुत-से सगे-सम्बन्धी श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे देवकी और वसुदेवके शिविरमें एकत्रित हो गये। उनका शिविर इतना विशाल था कि हजारोंकी संख्यामें लोग उसके भीतर बैठ सकते थे।

धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकु
द्रौपदी तथा उनकी माता कु
अपने भ्राता वसुदेवसे मिलनेपर कु
बोली—"भैया! जब मेरे पुत्रको विष दिया गया, जब मेरे पुत्रोंको जलानेकी चेष्टा की गयी और जब उनका राज्य, धन-सम्पत्ति सब कु
भिखारियोंके समान इधर-उधर भटक रहे थे, उस समय आपने हमारी कोई सुध नहीं ली। दुर्योधनने मेरे पुत्रोंको धोखा दिया। उसने पाण्डवोंको अपने ही राज्यसे निकालकर

द्रौपदीका उस सभामें चीरहरण करनेका प्रयास किया, जहाँ धृतराष्ट्र
आप तो मेरे भ्राता हैं इसलिए आपको तो मुझे स्मरण करना चाहिये था और मेरी सहायताके लिए आना चाहिये था। ऐसी सङ्कटकी घड़ीमें आप अपनी बहनको कैसे भूल गये?" उच्चस्वरमें रोते हुए उन्होंने अपने भ्राता वसुदेवजीका आलिङ्गन कर लिया, तब वसुदेवजी भी रोने लगे।

कु
गये हैं।" वसुदेवजीने उत्तर दिया—"हे बहन! इस प्रकार शोक मत करो। ऐसा श्रीभगवान्‌के कालचक्रके कारण ही हुआ है। उस समय मैं और देवकी भी कंसके कारागारमें बन्द थे और कंस हमें भीषण यातनाएँ दे रहा था। कंस हमें निरन्तर प्रताड़ित और अपमानित करता था। उसके सिपाहियोंने मुझे लोहेकी जञ्जीरोंमें बाँध रखा था। केवल इतना ही नहीं, उसने हमारे छह पुत्रोंको हमारी गोदसे छीनकर हमारे सामने ही चट्टानके ऊपर पटक-पटककर मार डाला। सौभाग्यवश, बलराम और कृष्ण बच गये। मैं स्वयं ही कारागारमें बन्दी था, इसलिए तुम्हारी सहायता न कर सका। यह सब होनेपर भी मैंने सदैव तुम्हें स्मरण किया और कारागारसे छूटनेके पश्चात् सर्वप्रथम मैंने तुम्हारे पास उद्धवको भेजा था। बहन! सब कु
लिए हमारा मिलन होता है और कु
एक-दूसरेसे बिछुड़ जाते हैं। कु
मिलती हैं और कु
शिखरपर पहुँच जाता है। काल ही सब कु
जीवकी अपनी इच्छापर कु
तुम चिन्ता मत करो क्योंकि अब वह समय बीत चुका है।"
इस प्रकार वसुदेवजी कु

इतनेमें नन्दबाबा और व्रजवासी अनेक बैलगाड़ियोंपर बैठकर उस स्थानके निकट पहुँचे। श्रीकृष्णके सभी ग्वालबाल सखा दाम, सुदाम, श्रीदाम, वसुदाम, सुबल, मधुमङ्गल आदि, मैया यशोदा, नन्दबाबा और गोपियाँ—श्रीमती राधिका, ललिता, विशाखा आदि सभी श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए बहुत उत्कण्ठित थे।

जब अन्यान्य सभी लोग श्रीकृष्णसे मिल रहे थे, तो किसीने उन्हें और श्रीबलदेव प्रभुको आकर कहा—"हे श्रीकृष्ण! व्रजसे आपके मैया और बाबा बैलगाड़ीमें आ रहे हैं।" यह सुनते ही श्रीकृष्ण उस सभामें विराजित कश्यप, कवि, हवि, अन्तरिक्ष, नारद, वशिष्ठ, अगस्त्य और वाल्मीकिजी जैसे हजारों भक्तोंको वहीं छोड़कर रोते-रोते नन्दबाबा और यशोदा मैयाकी ओर दौड़े। वे अत्यन्त विकल होकर कहने लगे—"ओ, मैया आ रही हैं। बाबा आ रहे हैं। मेरे सखा आ रहे हैं।" व्यग्र होकर रोते हुए वे कहने लगे—"मैया! मैया! तुम कहाँ हो?" बलदेव प्रभु भी रोते-रोते मैया-बाबाको पुकारते हुए उनकी ओर दौड़े।

कु

बैलगाड़ियाँ वहीं रुक गयीं। नन्दबाबा और यशोदा मैया गाड़ीसे उतरे और जब उन्होंने श्रीकृष्णको देखा, तो भावविह्वल होकर रोने लगे।

मैया यशोदाने तत्काल श्रीकृष्णको अपनी गोदमें ले लिया और बलदेव प्रभु नन्दबाबाके चरणोंमें गिर पड़े। व्रजमें रोते-रोते यशोदा मैयाके आँसू भी सूख गये थे, किन्तु आज अनेक वर्षोंसे बिछड़े हुए अपने प्राणप्रिय पुत्र श्रीकृष्णको पुनः देखकर यशोदा मैयाकी आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं। प्रगाढ़ वात्सल्यके उमड़ आनेके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा प्रवाहित होने लगी। यशोदा मैया आज

जिस प्रकारसे रो रहीं थी ऐसे वे व्रजमें पहले कभी नहीं रोयी थीं। व्रजमें वे एक प्रतिमाके समान हो गयीं थीं और श्रीकृष्णके विरहमें उनका हृदय सूख गया था। श्रीकृष्ण भी अभी तक सूखी लकड़ी या पत्थरकी प्रतिमाके समान थे, परन्तु अब वे भी उच्चस्वरमें रोने लगे। नन्दबाबाने बलदेव प्रभुको अपनी गोदमें बैठाया और वे दोनों भी रोने लगे। यह अत्यन्त मार्मिक दृश्य था। श्रीकृष्ण रोते-रोते 'मैया! मैया!' पुकारने लगे—नन्दबाबाकी गोदमें विराजमान बलदेव प्रभु भी 'बाबा! बाबा!' पुकारने लगे और नन्दबाबा उन्हें प्रेमसे दुलारने लगे।

श्रीकृष्णके पीछे-पीछे वसुदेवजी, देवकी तथा रोहिणी मैया भी वहाँ पहुँचीं। और वे सभी इस मार्मिक दृश्यको देखने लगे। रोहिणी मैया सोचने लगी कि यह कृष्ण देवकी माताके सम्मुख कु
भी मुझसे ही कु
जो देवकीके कहनेपर भी कभी उसकी गोदमें नहीं बैठता था, आज देवकी उसी कृष्णको यशोदाकी गोदमें निःसंकोच रूपमें निरन्तर अविरल रोते हुए देख रही है।

देवकी माता सोचने लगीं—"कृष्ण कभी मेरी गोदमें नहीं बैठा। इसने कभी मुझे 'मैया, मैया' नहीं पुकारा। परन्तु अब यह यशोदाकी गोदमें है और उसे 'मैया! मैया! मैया!' कहकर पुकार रहा है। यशोदा सोचती है—'कृष्ण मेरा ही पुत्र है' और कृष्ण भी इसी प्रकार सोचता है—'यशोदा ही मेरी मैया है, देवकी नहीं।' यशोदा निश्चित ही कृष्णको लेकर व्रज लौट जायेगी। कृष्ण सदाके लिए व्रजमें चला जायेगा और कभी भी द्वारका नहीं लौटेगा।"

वे यशोदाको बतलाना चाहती थीं—"हे यशोदे! कृष्ण तुम्हारा पुत्र नहीं है, मेरा पुत्र है, परन्तु अभी यह इस बातको भूल गया है और तुम्हें ही अपनी माँ मानता है।"

वे श्रीकृष्णको भी यही बतलाना चाहती थीं—"तुम यशोदाके पुत्र नहीं हो, तुम मेरे पुत्र हो।"

लोक-मर्यादाके कारण देवकी माता सभीके सामने यह बात स्पष्ट रूपसे नहीं कह सकती थी। इसलिए बड़ी चतुराईसे वे बोलीं—"हे सखी यशोदे! तुम अत्यन्त दयालु हो। जब हम कंसके कारागारमें थे, उस समय कृष्णके जीवनकी रक्षाके लिए हमने गोपनीय रूपसे उसे तुम्हारे पास गोकु
यह बात जानती थीं, तथापि तुमने अपनी कोखसे जन्मी सन्तानके जैसे ही इसका लालन-पालन, सेवा-शुश्रूषा की है। जिस प्रकार पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं, उसी प्रकार तुमने इसकी रक्षा की। इसलिए मैं मानती हूँ कि समस्त विश्व ब्रह्माण्डमें तुम्हारे समान दयालु और कोई नहीं है। तुम अत्यन्त उदार और विशाल हृदयवाली हो। तुमने जन्मसे लेकर ग्यारह वर्ष तक इसका लालन-पालन किया। इसलिए यह सदैव यही सोचता है कि तुम ही इसकी मैया हो। इसीलिए यह कभी मुझे मैया नहीं कहता।"

रोहिणी मैयाको आभास हुआ कि देवकी कु
बात कहनेकी चेष्टा कर रही है—वे यशोदा मैया और श्रीकृष्णके बीच एक दीवार बननेकी चेष्टा कर रही है। यशोदा और कृष्णके मिलनमें किसी प्रकारकी बाधा न हो, इसका उपाय सोचकर वे तुरन्त बोली—"देवकी बहन! कु
और अन्य बन्धु-बान्धव हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें वहाँ चलना चाहिये।" इस प्रकार वे चतुरायीसे देवकी सहित वसुदेव महाराजको अतिथियोंके स्वागतके लिए वहाँसे लेकर चली गयीं।

थोड़े समयके पश्चात् यशोदा मैयाका हृदय कु
हुआ, किन्तु वे कु
और श्रीकृष्ण कु

समय मैया और पुत्र केवल हृदयसे ही भावोंका आदान-प्रदान कर रहे थे। यशोदा मैयाने तब सोचा—"बाहरमें निकट ही राधा, ललिता, विशाखा आदि सभी गोपियाँ प्रतीक्षा कर रही हैं। मेरी उपस्थितिमें वे कृष्णसे मिल नहीं पायेंगी। नन्दबाबा और बलदेव भी यहाँपर उपस्थित हैं।"

अभी तक किसी प्रकारसे राधाजी और उनकी सखियोंने अपने भावोंपर नियन्त्रण रखा हुआ था और उनके प्राण उनकी देहमें थे। श्रीकृष्णके निकट पहुँचते ही अब उनके लिए एक क्षणका भी विरह असहनीय हो गया था। वे अपने प्राण त्यागनेवाली ही थीं। अत्यन्त दयालु और कृपामयी मैया यशोदाने सोचा—"यदि तत्काल ही इन्हें कृष्णसे भेंट करनेका अवसर नहीं मिला, तो ये प्राण धारण नहीं कर सकेंगी। मुझे चतुराईसे अन्य सभीको यहाँसे कहीं और भेज देना चाहिये, जिससे कि गोपियाँ निःसंकोच कृष्णसे मिल सकें। यदि मैंने विलम्ब किया तो वे सब-की-सब प्राण त्याग देंगी। क्योंकि वे इस विरहको और अधिक सहन नहीं कर सकतीं।"

यह सोचकर यशोदा मैयाने बलदेव प्रभुका हाथ पकड़ लिया और नन्दबाबाकी ओर देखते हुए बोलीं—"हमें औरोंसे भी भेंट करनी चाहिये।" बलदेव प्रभु यशोदा मैयाके इस इङ्गितको समझ गये और उन्होंने सोचा—"मेरी उपस्थितिमें गोपियाँ यहाँ नहीं आयेंगी।" और शीघ्र ही मैया-बाबाके साथ वे भी वहाँसे चले गये। यशोदा मैयाने देवकी माताका आलिङ्गन किया और उनमें परस्पर वार्त्तालाप होने लगा। नन्दबाबाने भी वसुदेवजी और अन्य लोगोंसे भेंट की और वे एक दूसरेके सुख-दुःखकी चर्चा करने लगे।

नवम अध्याय

श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा कु
श्रीकृष्णके बीच हुए वार्त्तालापका आस्वादन

(गोपियोंका श्रीकृष्णसे पुनर्मिलन)

गोपियाँ श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए बहुत आतुर और अधीर हो रही थीं और उनके प्राण निकलनेवाले ही थे। इतने वर्षों तक श्रीकृष्णसे मिलनकी आशामें ही वे बड़ी कठिनाईसे प्राणोंको धारण कर रही थीं, परन्तु जैसे-जैसे वे श्रीकृष्णके निकट आती गयीं, वैसे-वैसे ही एक-एक क्षणका विलम्ब भी उन्हें अनेक युगोंके समान प्रतीत होने लगा और उनका धैर्य टूटने लगा। श्रीकृष्णका दर्शन करते ही वे बहुत फूट-फूटकर रोने लगीं। ऐसा रोना तो कृष्णके विरहमें व्रजमें भी कभी नहीं हुआ था। वर्षोंसे श्रीकृष्णसे मिलनकी प्रतीक्षा कर रही गोपियोंका अभीष्ट आज पूर्ण हो रहा था।

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम्॥
(श्रीमद्भा॰ १०/८२/३९)

"जब गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णका दर्शन करती थीं तो पलकोंके गिरनेसे उनके दर्शनमें व्यवधान होनेपर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माको मूर्ख कहकर उनकी भर्त्सना करतीं कि उन्होंने उनकी आँखोंपर पलकें क्यों बनायीं? इतने वर्षोंके विरहके उपरान्त अब गोपियोंने अपने नेत्रोंके द्वारा श्रीकृष्णको अपने हृदयमें ले जाकर उनका प्रगाढ़ आलिङ्गन किया। उस

मिलनके आनन्दसिन्धुमें वे ऐसी निमग्न हो गयीं, जैसी निमग्नता बड़े-बड़े योगियोंके लिए भी सम्भव नहीं है।"

गोपियोंने, विशेषकर श्रीराधाजीने अपने हृदयमें श्रीकृष्णका प्रगाढ़ आलिङ्गन कर ऐसा अनुभव किया, मानो वे दोनों एक हो गये हों। वे श्रीकृष्णसे कु
उनका गला रुद्ध हो गया और वे कु
हो गयीं। श्रीकृष्ण भी गोपियोंको देखकर अधीर होकर रोने लगे। कु
ऐसी दशाके लिए स्वयंको दोषी मानते हुए उनसे कहा—"हे गोपियो! मेरी सखियो! तुम मेरे प्राणोंकी भी प्राण हो। तुमने मेरे वियोगका बहुत दुःख सहन किया है। तुमने मेरे लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया है—अपने पति, गृह, गुरुजनोंका भय और यहाँ तक कि तुमने अपने दुस्त्यज्य आर्यधर्मका भी परित्याग किया है, परन्तु मैं तुम्हारा त्यागकर दूर चला गया। तुम मुझे निष्ठुर और अकृतज्ञ समझती होंगी, परन्तु यह सत्य नहीं है। मैं सदा तुम्हें स्मरण करता रहा और एक क्षणके लिए भी तुम्हें नहीं भूला। मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है, इसके लिए मुझे क्षमा कर दो।"

कु
तो श्रीकृष्ण उन्हें सान्त्वना देनेके लिए उनसे बोले—

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृत्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः॥
(श्रीमद्भा॰ १०/८२/४४)

हे गोपियो! मेरे प्रति भक्ति ही जीवोंके लिए अमृतस्वरूप है, किन्तु मेरे प्रति तुम्हारा जो स्नेह है, वही एकमात्र तुमलोगोंका मुझसे मिलनका कारण है अर्थात् तुम्हारा स्नेह ही भक्तिकी परिपक्व उत्तम दशा है। अतएव तुम्हारा मेरे प्रति स्नेह शीघ्र ही हमारा पुनः सब समयके लिए मिलन करा देगा।

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः॥
(श्रीमद्भा॰ १०/८२/४५)

श्रीकृष्णने आगे कहा—"मेरी प्रियतमाओ! मैं तुम्हें एक रहस्य बतलाता हूँ। क्या तुम जानती हो कि मैं ही परम पुरुषोत्तम भगवान् हूँ? मैं ही विष्णु हूँ और सर्वत्र व्याप्त हूँ। मैं सभी प्राणियोंके हृदयमें वास करता हूँ। मैं तुम्हारे हृदयमें भी हूँ। मैं सर्वत्र हूँ और कहीं भी मेरा वियोग नहीं है। जैसे घटको मिट्टीसे अलग नहीं किया जा सकता है, वैसे ही तुम मुझसे अलग नहीं हो। तुम मेरा ही अङ्ग हो, तुम मुझसे ही बनी हो, अतः तुम मुझसे विरहका अनुभव क्यों करती हो? तुम अपने मनको एकाग्रकर मेरा ध्यान करोगी, तो तुम्हें अनुभव होगा कि मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ और तुमलोगोंसे मेरा कभी भी वियोग नहीं है। तुमलोग ऐसा समझो कि तुम्हारा शरीर, मन और सब कु
सर्वदा मेरा ही स्मरण करो और दुःखी मत होओ, मैं सदा तुम्हारे साथ ही हूँ।"

गोपियाँ श्रीकृष्णसे कु
रही थीं, परन्तु जब उन्होंने यह तत्त्वज्ञान सुना, तो उनका विरह और अधिक बढ़ गया और धीरे-धीरे उन्हें क्रोध भी आने लगा। किन्तु तब भी गोपियाँ अपने रोषको गोपनकर श्रीकृष्णको मधुर स्वरमें कहने लगीं—"ओ छलिया! तुम भीतर-बाहर दोनोंसे काले हो! तुम सदा ही हमें छलते आये हो। हम जानती हैं कि तुम भगवान् नहीं हो, तुम यशोदा मैयाके ही पुत्र हो। हम जन्मसे ही तुम्हारा स्वभाव जानती हैं। तुम सदा झूठ ही बोलते हो। एक बार तुमने ब्रह्माण्डघाटपर मिट्टी खायी और मैयाके पूछनेपर झूठ बोल दिया कि मैंने मिट्टी नहीं खायी। तुम दूसरी गोपियोंके घरोंसे दधी-मक्खन चुराया करते थे और पकड़े जानेपर कहते थे

कि मैंने तो कोई चोरी नहीं की, क्यों मुझपर झूठा आरोप लगाती हो? जब तुम झूठ बोलते हो, चोरी करते हो, क्रोध करते हो, तुम्हें भूख-प्यास लगती है, तब तुम भगवान् कैसे हो सकते हो?

तुम बहुत रसिक हो। क्या तुम्हें स्मरण है कि व्रजमें तुम अपनी वंशीपर अस्फु
और जब हम वंशीनादके वशीभूत होकर अपना घर-बार त्यागकर तुमसे मिलने आती थीं, तब तुम हमारे साथ नृत्य, गान और हास-परिहास करते थे। भगवान् क्या हम जैसी गँवार ग्वालिनोंके साथ भला नृत्य-गान करनेके लिए आयेंगे? जब राधाजी मान करती थीं, तब उन्हें मनानेके लिए तुम अपनी वंशी और यहाँ तक कि अपना मस्तक भी उनके चरणोंमें रख देते थे और उनसे क्षमा माँगते थे। भगवान्के चरणोंमें तो ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता भी अपने शीश झुकाते हैं, परन्तु भगवान् किसीके आगे नतमस्तक नहीं होते हैं। इसलिए तुम अपनेको भगवान् घोषितकर असत्य भाषण कर रहे हो। तुम केवल हमारे प्राणप्रियतम ही हो, अन्य कु

किन्तु एक अन्य गोपी अपने भावोंको सङ्गोपनकर श्रीकृष्णके वचनोंके प्रत्युत्तरमें भङ्गी करते हुए कहने लगीं—

आहूश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/८२/४८)

"हे कमलनाभ! अगाध बोधसम्पन्न बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयकमलमें आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते रहते हैं। जो लोग संसाररूप कूपमें गिरे हुए हैं, वे उससे निकलनेके लिए आपके चरणकमलको ही एकमात्र अवलम्बन

बनाते हैं। प्रभो! आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपके वही चरणकमल घर-गृहस्थीके झंझटोंमें फँसे रहनेपर भी सदा-सर्वदा हमारे हृदयमें विराजमान रहे, हम एक क्षणके लिए भी उन्हें न भूलें।"

यहाँ बाह्य रूपसे दीनता प्रकाश करती हुईं गोपियाँ संसारकूपमें पतित जीवोंके समान अपने उद्धारके लिए श्रीकृष्णके चरणकमलोंको अपने हृदयमें देखना चाहती हैं। परन्तु गोपियोंने तो श्रीकृष्णके लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया है, अतः उनका संसार ही कहाँ है? इसलिए यह केवल गोपियोंकी व्यङ्गोक्तिमात्र ही है।

गोपियोंके हृदयके भाव अत्यन्त गम्भीर हैं। श्रीमन् महाप्रभु रथ-यात्राके समक्ष उन्हीं गम्भीर भावोंका एक-एक करके आस्वादन करते हुए भावाविष्ट हो रहे थे। उनके द्वारा उच्चारित श्रीमद्भागवतके श्लोकोंको तथा तदुपरान्त उन श्लोकोंकी व्याख्याको श्रवणकर श्रील स्वरूप दामोदरके अतिरिक्त अन्यान्य भक्त समझ ही नहीं पाते थे। किसीको भी यह समझ नहीं आता था कि इन श्लोकोंका भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी रथ-यात्रासे क्या सम्बन्ध है? किन्तु श्रीमन् महाप्रभु गोपियोंके भावोंमें डूबकर श्रीजगन्नाथदेवके साथ परस्पर वार्त्तालाप करते ही जा रहे थे। वे अब थोड़ा रोष करते हुए कहने लगे—

नहे गोपी योगेश्वर, पद-कमल तोमार
ध्यान करि पाईबे सन्तोष।
तोमार वाक्य-परिपाटी, तार मध्य कु
शुनि' गोपीर आरो बाढ़े रोष॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१४१)

"गोपियाँ योगियोंके समान नहीं हैं, जो केवल आपके चरणकमलोंके ध्यानसे ही सन्तुष्ट हो जायें। आपकी

वचन-परिपाटीमें कपट है। आप हमें अपने चरणोंके ध्यानकी शिक्षा दे रहे हैं।"

देह-स्मृति नाहि जार, संसारकूप काँहा तार,
ताहा हईते ना चाहे उद्धार।
विरह समुद्र-जले, काम-तिमिङ्गिले गिले,
गोपिगणे नेह' तार पार॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१४२)

"जिन्हें अपने देहकी भी स्मृति नहीं है उनका संसारकूपकी ही कहाँ है, जो वे उससे उद्धार चाहें। हम तो आपके जिस विरहके अथाह समुद्रमें डूब रही हैं। उस विरह-समुद्रमें आपकी 'केवल-सेवा-कामरूप' तिमिङ्गल हमें निगल रही है अतएव उस विरह-समुद्रसे हमारा उद्धार करें।"

श्रीकृष्णकी साक्षात् सेवा ही गोपियोंका जीवन है और उनके विरह-दुःखमें ऐसी सेवाका अभाव है। गोपियोंके लिए प्रयुक्त 'काम' शब्द उनके अप्राकृत प्रेमको ही सूचित करता है, इस संसारके स्त्री-पुरुषकी कामवासनाको नहीं।

गोपियाँ आगे कह रही हैं—

वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन, वन,
सेई कु
सेई व्रजेर जनगण, माता, पिता, बन्धुगण,
बड़ चित्र, केमने पासरिला॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१४३)

"हे कृष्ण! हमें इस बातका बड़ा आश्चर्य है कि आप अपने व्रजजन अर्थात् माता-पिता, सखाओं और बन्धुओंको कैसे भूल गये? आप कैसे वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन और अन्य-अन्य वनोंकी लीला-स्थलियोंको भूल गये, जहाँ आपने हमारे साथ रासलीला आदि की थी?"

विदग्ध, मृदु, सद्गुण, सुशील, स्निग्ध, करुण,
तुमि, तोमार नाहि दोषाभास।

तबे जे तोमार मन, नाहि स्मरे व्रजजन,
से–आमार दुर्दैव–विलास॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१४४)

“आप तो विदग्ध, मृदु, सद्‌गुणसे युक्त, सुशील, स्निग्ध और करुणामय हैं। आपमें तो दोषका आभासमात्र भी नहीं है। तब भी आपका मन जो व्रजजनोंका स्मरण नहीं करता, उसमें आपका कोई दोष नहीं, बल्कि उसका कारण तो हमारा दुर्दैव ही है।”

परन्तु गोपियोंके हृदयगत भाव ये हैं—“हे कृष्ण! आप तो स्वयं हमारे विरहके समुद्रमें डूब रहे हैं। जो स्वयं ही डूब रहा हो, वह कैसे दूसरेकी रक्षा कर सकता है? केवल हम ही तुम्हारी रक्षा कर सकती हैं। और फिर तुम हमें अपने चरणोंका ध्यान करनेका उपदेश दे रहे हो, यह तो हास्यास्पद विषय ही है। हम तो सदासे ही तुम्हारे चरणोंको अपने वक्षस्थलपर धारण करनेकी अभिलाषा करती रही हैं। इसलिये यह उपदेश तुम ब्रह्मा, शङ्कर आदि योगियोंको ही दो, हमें इसकी आवश्यकता नहीं है। हम तो तुम्हें भूलना चाहती हैं। तुम्हारा स्मरण करनेसे ही हमारे जीवनमें सभी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। यदि तुम हमें भूलकर कहीं दूर जा सकते हो, तो हम भी तुम्हारा स्मरण नहीं करना चाहती हैं। परन्तु विडम्बना तो यह है कि हम तुम्हें चाहकर भी भुला नहीं सकतीं। जो तुम्हारे नाम–लीला आदिका स्मरण करते हैं, वेपथके भिखारी हो जाते हैं। उनका गृह–परिवार आदि कु
इधर–उधर भटकते रहते हैं, हमारी भी वैसी ही अवस्था हो गयी है।

“हम ब्रह्मा आदि जैसे योगेश्वर नहीं हैं, जो स्वार्थके लिये तुम्हारा ध्यान करेंगी। हम तो केवल तुम्हारी प्रसन्नता चाहती

हैं। हम जानती हैं कि हमारे विरहमें तुम्हारे प्राण छटपटाते हैं, इसलिये हम अपनी कृपारूपी अमृत वर्षणकर तुम्हारे प्राणोंकी रक्षाके लिए यहाँ आयी हैं। हम तुम्हारे लिए नहीं रो रही हैं, हम तो तुम्हारी दयनीय स्थितिको देखकर रो रही हैं। तुम अकेले असहाय हो और केवल हमारी सखी राधा ही तुम्हें बचा सकती है, क्योंकि वही तुम्हारे प्राणस्वरूप है। यदि तुम प्रसन्न रहना चाहते हो, तो हमारे हृदयरूपी रथपर विराजमान हो जाओ। हम तुम्हें उस स्थानपर ले जायेंगी जहाँ हमारे मन और प्राण बसते हैं। हम यहाँ तुम्हारी सेवा नहीं कर पायेंगी, क्योंकि तुम्हारे साथ तुम्हारी पत्नियाँ, पुत्र-पुत्रियाँ और सेना तथा अनेकों मित्र और ऋषिगण आदि हैं। हम तुम्हें वृन्दावन ले जाना चाहती हैं, जहाँ हमारी और तुम्हारी अनेकानेक प्रकारकी मधुर लीलाएँ होती थीं और वहीं तुम्हें हम सभी प्रकारसे सन्तुष्ट कर सकेंगी।"

श्रीमन् महाप्रभु गोपियोंके इन भावोंका आस्वादन करते-करते काव्य-प्रकाशका एक पद गान करने लगे—

यः कौमारहरः सः एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानीलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसी तरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥

(अर्थात् एक नायिका अपनी एक सखीसे कहती है—)"जिसने मेरी कौमार अवस्थाका हरण किया था, अब वही मेरा वर अर्थात् वैवाहिक पति है। उसके साथ कौमार अवस्थामें प्रथम मिलनके समय जो चैत्रमाहकी ज्योत्सनामयी रात्रि थी, आज भी वही चैत्रमाहकी ज्योत्सनामयी रात्रि है। प्रथम मिलनके समयकी भाँति खिली हुई मालती पुष्पोंकी भीनी-भीनी मधुर सुगन्धयुक्त वायु अब भी कदम्ब वनकी ओरसे प्रवाहित हो रही है हमारे घनिष्ठतम सम्बन्धमें मैं भी वही प्रियतमा हूँ;

तथापि उसी रेवा नदीके किनारे वेतसी वृक्षके नीचे हुए प्रथम मिलनके समयवाले सुरत क्रियारूप प्रेममय विहारके लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।”

इस श्लोकको पाठ करनेके पीछे श्रीमन् महाप्रभुके क्या भाव हैं, इसे श्रीस्वरूप दामोदरके अतिरिक्त कोई भी नहीं जानता था। परन्तु श्रीरूप गोस्वामी जो कि अभी-अभी रथ-यात्राके उत्सवमें सम्मिलित हुए थे, उन्होंने इस श्लोकको सुनकर श्रीमन् महाप्रभुके भावोंके अनुरूप ही एक अन्य श्लोक[१] की रचना की।

---

[१] [यद्यपि पादटीकामें दिया जा रहा विषय भी श्रील गुरुदेवने अपनी कथाके बीचमें ही वर्णन किया था, तथापि प्रसङ्गके धारा-प्रवाहको बनाये रखनेके लिए यहाँ इसे अलगसे दिया गया है।]

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कु
राधा तदिदमुभयोः सङ्गम-सुखम।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिन-विपिनाय स्पृहयति॥

(पद्यावली—३८९)

कु
सखीसे कह रही हैं—“हे सहचरी! जिन्होंने वृन्दावनमें मेरे साथ एकान्तमें विहार किया था, इस कु
वही राधा हूँ तथा दोनोंका मिलन सुख भी वैसा है, तथापि जहाँ विहार करते-करते श्रीकृष्ण मधुर मुरलीमें पञ्चम तान छेड़ते थे, यमुना तटपर विराजमान उसी वृन्दावनके लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।”

इस श्लोकका गूढ़ तात्पर्य यह है कि यद्यपि ये श्रीकृष्ण वही हैं, तथापि इनके हाथोंमें मधुर मुरली नहीं, इनके सिरपर मोर मुकु
नन्दबाबा और यशोदा मैयाका पुत्र होनेका भाव नहीं है। यहाँ श्रीकृष्णके साथ इनकी सभी पत्नियाँ, बलराम आदि भ्राता, श्रीवसुदेव और देवकी माता, हाथी-घोड़े और सेनाएँ हैं। अतः वही श्रीकृष्ण होनेपर भी यहाँ वृन्दावन जैसा एकान्तमें प्राप्त होनेवाला मिलनका सुख नहीं है। अतः श्रीराधाजी श्रीकृष्णसे प्रार्थना कर रही हैं कि तुम भी हमारे साथ वृन्दावन चलो। श्रीकृष्णने मानों श्रीराधाजी और व्रजवासी गोप-गोपियोंके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। तब गोपियाँ श्रीकृष्णको मनरूपी रथपर बैठाकर

श्रीमती राधारानी कु
अनुकूल परिवेश न देखकर उन्हें वृन्दावन ले जाना चाहती थीं। इसलिए श्रीमती राधारानीके भावोंमें विभावित श्रीमन् महाप्रभु श्रीजगन्नाथजीसे कहने लगे—

अन्येर हृदय-मन, मोर मन-वृन्दावन,
'मने' 'वने' एक करि' जानि।
ताँहा तोमार पदद्वय, कराह यदि उदय,
तबे तोमार पूर्ण कृपा मानि॥

(चै॰ च॰ म॰ १३/१३७)

संसारके लोगोंका मन और हृदय एक नहीं होता है, परन्तु मेरा मन और वृन्दावन एक है, क्योंकि मेरा मन
— — — — — — — — — — — — — — — —
कु
मनोभाव था, जिसे श्रीरूप गोस्वामीने जानकर उसीके अनुरूप श्लोककी रचना की थी।

श्रीमन् महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय-वैष्णवजन रथ-यात्रामें गोपियोंके इन भावोंके आनुगत्यमें श्रीकृष्णको रथपर बैठाकर कु

श्रीरूप गोस्वामीने यह श्लोक एक तालपत्रपर लिखकर उसे श्रीहरिदास ठाकु
स्नानके लिए चले गये। श्रीमन् महाप्रभु नित्यप्रति श्रील हरिदास ठाकु
मिलने उनकी कु
देखकर उसे पढ़ा। इतनेमें ही श्रीरूप गोस्वामी समुद्रसे स्नानकर लौटे और उन्होंने श्रीमन् महाप्रभुको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। श्रीमन् महाप्रभु उस श्लोकको पढ़कर भावाविष्ट हो रहे थे। श्रीरूप गोस्वामीको देखते ही महाप्रभुने स्नेहमें भरकर उन्हें प्यारसे एक थप्पड़ मारकर पूछा—"रूप! तुमने मेरे मनका भाव कैसे जान लिया?" फिर अत्यन्त विस्मित होकर श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीकी ओर मुड़कर पूछा—"रूपने मेरे मनकी बात कैसे जान ली?" श्रीस्वरूप दामोदरजीने कहा—"क्योंकि श्रीरूपने आपके मनकी बात जान ली है, इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आपने इसपर अवश्य ही कृपा की होगी।" श्रीमन् महाप्रभुजी बोले—"हाँ! मैंने रूपका आलिङ्गन करके इसके हृदयमें समस्त शक्तिका सञ्चार किया था। यह गूढ़ रसशास्त्रके विवेचनमें योग्य पात्र है।"

वृन्दावनसे कभी पृथक् नहीं होता है। वृन्दावनमें ही आप परम सुखका अनुभव करते हैं। अतएव यदि आप अपने चरणकमल मेरे मनरूपी वृन्दावनमें रखेंगे, तभी मैं इसे आपकी पूर्ण कृपा मानूँगी।

हम आपके बिना प्राण धारण नहीं कर सकती। यदि आप हमारे साथ वृन्दावन नहीं चलेंगे, तो व्रजके सभी व्रजवासी, गैया-बछड़े, पशु-पक्षी आपके विरहमें जीवित नहीं रह पायेंगे और सारा व्रज सूना हो जायेगा। श्रीमन् महाप्रभुके मुखसे श्रीमती राधरानीकी विनती सुनकर श्रीजगन्नाथका व्रजवासियोंके प्रति प्रेम और अधिक बढ़ गया और वे व्याकु
और राधा-भावमें आविष्ट श्रीमन् महाप्रभुको सान्त्वना देनेके लिए बोले—

प्राणप्रिय, शुन मोर, एई सत्य-वचन।
तोमा-सबार स्मरणे, झुरों मुञि रात्रिदिने,
मोर दुःख ना जाने कोन जन॥

व्रजवासी यत जन, माता, पिता, सखागण,
सबे हय मोर प्राणसम।
ताँर मध्य गोपीगण, साक्षात् मोर जीवन,
तुमि-मोर जीवनेर जीवन॥

(चै॰ च॰ म॰ १३/१४९-१५०)

हे प्रियतमे! मेरे इस सत्य वचनको सुनो! मैं दिन-रात तुम सब व्रजवासियोंका स्मरणकर रोता रहता हूँ। द्वारकामें रुक्मिणी, सत्यभामा और यहाँ तक कि उद्धव भी मेरी इस मन-पीड़ाको नहीं समझ सकते। इसलिए मैं भीतर-ही-भीतर इस दुःखकी ज्वालाको सहन करनेके लिए विवश हूँ। मेरे मैया-बाबा, सखा, सभी व्रजवासी मेरे प्राणके समान हैं और उनमेंसे गोपियाँ तो मेरा जीवन हैं। उन सबमें भी हे राधे! तुम तो मेरे जीवनका भी जीवन हो।

तोमा सबार प्रेमरसे, आमाके करिल वशे,
आमि तोमार अधीन केवल।
तोमार-सबा छाड़ाइया, आमा दूर देशे लञा,
राखियाछे दुर्दैव प्रबल॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१५१)

तुम सबके प्रेम रसने मुझे वशीभूत करके रखा है, अतएव मैं तो केवल तुमलोगोंके ही अधीन हूँ। यह मेरा प्रबल दुर्दैव ही है जो मुझे तुमलोगोंसे बहुत दूर देशमें ले गया।

प्रिया प्रिय-सङ्गहीना, प्रिय प्रिया-सङ्ग बिना,
नाहि जीये, ए सत्य प्रमाण।
मोर दशा शोने यबे, ताँर एई दशा हबे,
एई भये दुँहे राखे प्राण॥

सेई सती प्रेमवती, प्रेमवान सेई पति,
वियोगे ये वाञ्छे प्रिय-हिते।
ना गणे आपन दुःख, वाञ्छे प्रियजन-सुख,
सेई दुई मिले अचिराते॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१५२-१५३)

प्रिया प्रियतमके बिना और प्रियतम प्रियाके बिना जीवित नहीं रह सकते, यह सत्य है। एकको दशा सुनकर दूसरेकी भी वैसी ही दशा होगी, यदि दोनोंमेंसे एक प्राण त्याग दे, तो दूसरा भी प्राण धारण नहीं कर सकेगा। इसी भयसे दोनों अपने-अपने प्राण धारण करते हैं। वही सती प्रेमवती है और वही पति प्रेमवान है, जो वियोगमें भी प्रियके हितकी वाञ्छा करते हैं। वे तो केवल एक-दूसरेकी प्रसन्नता ही चाहते हैं और उन्हें अपने दुःखका भान भी नहीं होता है। वे तो अपने प्रियजनके सुखकी कामना करते हैं। ऐसे प्रेमीजनका शीघ्र ही मिलन होता है।

राखिते तोमार जीवन, सेवि आमि नारायण,
ताँर शक्त्ये आसि निति-निति।
तोमा-सने क्रीड़ा करि', पुनः जाई यदुपुरी,
ताँहा तुमि मानह मोर स्फूर्ति॥
मोर भाग्य मो-विषये, तोमार जे प्रेम हये,
सेई प्रेम-परम प्रबल।
लुकाइया आमा आने, सङ्ग कराय तोमा-सने,
प्रकटेह आनिबे सत्वर॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१५४-१५५)

श्रीकृष्णने आगे कहा—"राधे! तुम मुझे सर्वाधिक प्रिय हो। मैं यह जानता हूँ कि तुम मेरे बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकती। अतएव इसलिए मैं तुम्हारे प्राणोंकी रक्षाके लिए भगवान् नारायणकी आराधना करता हूँ। उनकी कृपासे ही मैं प्रतिदिन वृन्दावन आकर तुम्हारे साथ क्रीड़ा करता हूँ और पुनः द्वारका लौट जाता हूँ। किन्तु तुम उसे वृन्दावनमें मेरी स्फूर्ति मानती हो। मेरे सौभाग्यवशतः मेरे प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, वह अत्यन्त प्रबल है। वही प्रबल प्रेम मुझे छिपाकर वृन्दावनमें लाता है और तुमसे मेरा मिलन कराता है और वही प्रबल प्रेम अब शीघ्र ही साक्षात् रूपसे मेरा वृन्दावनमें तुमसे मिलन करायेगा।"

यादवेर विपक्ष, यत दुष्ट कंसपक्ष,
ताहा आमि कैलूँ सब क्षय।
आछे दुई-चारि जन, ताहा मारि' वृन्दावन,
आईलाम आमि, जानिह निश्चय॥
सेई शत्रुगण हैते, व्रजजन राखिते,
रहि राज्ये उदासीन हइया।
जेबा स्त्री-पुत्र-धने, करि राज्य आवरणे,
यदुगणेर संतोष लागिया॥

तोमार ये प्रेमगुण, करे आमा आकर्षण,
आनिबे आमा दिन दश बिशे।
पुनः आसि' वृन्दावने, व्रजवधु तोमा-सने,
विलसिव रजनी-दिवसे॥
(चै॰ च॰ म॰ १३/१५६-१५८)

"मैंने यदुवंशके शत्रुओं—कंस आदि असुरोंको मार दिया है, अब केवल दो-चार असुर ही बाकी हैं। इसलिए मैं उनका भी वध करके निश्चित ही वृन्दावन लौट आऊँगा। यदि मैं अभी व्रजमें आऊँगा तो वे असुर व्रजवासियोंको परेशान करेंगे। अतः यह निश्चित जानो कि मुझे अपनी पत्नियों, पुत्र-पुत्रियों एवं धन-सम्पत्तिमें कोई आसक्ति नहीं है, मैं तो केवल यादवोंकी सन्तुष्टिके लिए द्वारकामें उदासीन भावसे रहता हूँ। मैं तुम लोगोंके प्रेमके ही वशीभूत हूँ। अतः मात्र दस-बीस दिनोंमें ही मैं असुरोंका वधकर पुनः वृन्दावन आ जाऊँगा और तुम्हारे साथ रात-दिन क्रीड़ा-विलास करूँगा।"

किन्तु गोपियाँ श्रीकृष्णकी कोई भी बात न सुनकर उन्हें अपने मनरूपी रथपर बैठाकर वृन्दावनमें ले आयीं। इसी भावनासे श्रीजगन्नाथदेवको श्रीचैतन्य महाप्रभु रथपर बैठाकर द्वारकासे वृन्दावन ला रहे हैं।

दशम अध्याय

(हेरा–पञ्चमी)

प्रत्येक वर्ष रथ–यात्रासे पूर्व भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी स्नान–यात्राके लिए सम्पूर्ण भारतके तीर्थोंसे हजारों घड़े जल लाया जाता है और इस जलसे भगवान् श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव तथा श्रीसुभद्राजीका अभिषेक किया जाता है। बहुत अधिक जलसे स्नान करनेसे वे अस्वस्थ–लीलाका अभिनय करते हैं। तब लक्ष्मीजी पन्द्रह दिनों तक उन्हें अपने महलमें ले जाकर द्वार बन्द कर लेती हैं। लक्ष्मीजीकी सेवा–शुश्रूषाके द्वारा वे पुनः स्वास्थ्य लाभ करते हैं। तब भगवान् श्रीजगन्नाथदेव लक्ष्मीजीसे कहते हैं—"हे प्रिये! तुम्हारी सेवाके कारण हम स्वस्थ तो हो गये हैं, परन्तु इतने दिन तक महलमें बन्द रहनेसे हमें अच्छा नहीं लग रहा है। जल–वायु परिवर्त्तनके लिए कु

है।" तब लक्ष्मीजीने पूछा—"प्रभो! आपलोग कब तक लौटेंगे?" श्रीजगन्नाथदेव बोले—"हम शीघ्र ही लौट आयेंगे।"

श्रीलक्ष्मीजी भगवान् जगन्नाथदेवके बाहर जानेके लिए सहमत हो गयी तथा श्रीबलदेव प्रभु और सुभद्राजीके जगन्नाथजीके साथ जानेसे तो लक्ष्मीजीके मनमें किसी प्रकारका कोई संशय ही नहीं रहा। अतएव लक्ष्मीजीकी सहमतिसे ही भगवान् श्रीजगन्नाथदेव, श्रीबलदेव तथा सुभद्राजीके साथ रथपर सवार होकर घूमने चले गये।

लक्ष्मीजीके द्वारा क्रोध प्रदर्शन

जब श्रीजगन्नाथदेवको घूमनेके बहानेसे बाहर गये पाँच दिन हो गये, तो लक्ष्मीजी सोचने लगीं कि प्रभु कहाँ चले

गये? वे तो शीघ्र ही आनेका वचन देकर गये थे, परन्तु इतने दिनोंसे लौटे नहीं हैं। लक्ष्मीजी श्रीजगन्नाथजीकी विलम्बरूपी उपेक्षाको सहन करनेमें असमर्थ हो गयी तथा क्रोधित होकर उन्होंने अपनी सभी दासियोंको आज्ञा दी कि वे अपने अस्त्र-शस्त्र सहित तैयार हो जायें। तब वे सेनाध्यक्षके समान अपने पतिपर आक्रमण करनेके लिए प्रस्तुत हो गयी। वे श्रीजगन्नाथजीको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गुण्डिचा मन्दिर पहुँच जाती हैं और वहाँ श्रीजगन्नाथजीको 'हेरती' अर्थात् ढूँढ़ती हैं। इसलिए उत्कलवासी इस दिनको 'हेरा-पञ्चमी' कहते हैं।

श्रीमन् महाप्रभुकी 'हेरा-पञ्चमी' के दर्शनकी अभिलाषा

श्रीमन् महाप्रभु नीलाचलको द्वारका और गुण्डिचा मन्दिरको वृन्दावन कहकर जगत्-वासियोंको द्वारका और वृन्दावनका अन्तर समझाना चाहते थे। इसलिए एक दिन पहले श्रीमन् महाप्रभुने श्रीकाशी मिश्रसे कहा—"मैं अपने भक्तोंके साथ 'हेरा-पञ्चमी' का उत्सव देखना चाहता हूँ।" काशी मिश्रने श्रीमन् महाप्रभुकी इच्छाको राजा प्रतापरुद्रके समक्ष प्रकट किया। श्रीकाशी मिश्रने राजासे कहा कि महालक्ष्मीदेवीजीको सुन्दर-सुन्दर स्वर्ण आभूषणोंसे सुसज्जित करके इतना भव्य उत्सव करो कि सभी उनका वैभव देखकर आश्चर्यचकित रह जायें और सोचें कि इस प्रकारका उत्सव उन्होंने पहले कभी नहीं देखा। राजा यह सुनकर अति प्रसन्न हो गये कि उन्हें श्रीमन् महाप्रभुकी सेवाका सुनहरा अवसर मिल रहा है। उन्होंने काशी मिश्रसे कहा कि वे राजकोषसे जो चाहे ले सकते हैं।

हेरा-पञ्चमीके दिन काशी मिश्रने सैकड़ों भक्तोंको सुन्दर शृङ्गार कराकर इस लीलाके लिए तैयार किया। श्रीमन् महाप्रभु प्रातःकाल अपने भक्तोंको लेकर गुण्डिचा मन्दिरमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिए गये और फिर हेरा-पञ्चमीका उत्सव देखनेके लिए सभी भक्तोंको लेकर श्रीजगन्नाथ मन्दिर

आ गये। काशी मिश्रजीने उनका बहुत आदर-सत्कार करके सिंहद्वारके पास ही एक सुन्दर स्थानपर उन्हें बैठा दिया।

जैसा कि पूर्व अध्यायोंमें वर्णन किया गया है, व्रजवासी और द्वारकावासी दोनों ही श्रीकृष्णसे बहुत प्रेम करते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण केवल व्रजवासियोंके प्रेमके ही वशीभूत होते हैं। इसलिए 'हेरा-पञ्चमी' के दिन श्रीमन् महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदरसे कु
जगत्में स्थापित करना चाहते थे।

श्रीमन् महाप्रभु तथा श्रील स्वरूप दामोदरका संवाद

रसविशेष अर्थात् व्रजरसके वैकु
अभिलाषासे श्रीमन् महाप्रभुने कु
स्वरूप दामोदरसे पूछा—

"यद्यपि जगन्नाथ करेन द्वारका विहार।
सहज प्रकट करे परम उदार॥

तथापि वत्सर-मध्ये हय एकबार।
वृन्दावन देखिते ताँर उत्कण्ठा अपार॥

(चै॰ च॰ म॰ १४/११७-११८)

"यद्यपि श्रीजगन्नाथदेव जीवोंके प्रति अपनी परम करुणाको सहज रूपमें प्रकटकर द्वारकाधामरूपी नीलाचल मन्दिरमें विराजमान रहकर वहाँ विहार करते हैं, तथापि वर्षमें एक बार उनके हृदयमें वृन्दावनमें जानेकी तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत हो जाती है।

वृन्दावन-सम एई उपवन-गण।
ताहा देखिबारे उत्कण्ठित हय मन॥

(चै॰ च॰ म॰ १४/११९)

[बड़दाण्डी (बड़े रास्ते) के दोनों ओर सुन्दर उपवन हैं। श्रीमन् महाप्रभुने उन उपवनोंकी ओर इङ्गित करते हुए कहा—] ये सभी उपवन वृन्दावनके उपवनोंके समान है

इसीलिए भगवान् श्रीजगन्नाथदेवका मन इन्हें देखनेके लिए आतुर रहता है।

बाहिर हइते करे रथयात्रा-छल।
सुन्दराचले जाय प्रभु छाड़ि नीलाचल॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/१२०)

श्रीजगन्नाथजी बाह्य रूपमें रथपर चढ़कर उपवनमें घूमने जानेके छलसे नीलाचल (द्वारका) को छोड़कर सुन्दराचल (वृन्दावन) चले जाते हैं।

नाना-पुष्पोद्याने तथा खेले रात्रि-दिने।
लक्ष्मीदेवीरे सङ्गे नाहि लये कि कारणे?"

भगवान् वहाँके उपवनोंमें दिन-रात क्रीड़ा-विहार करते हैं, तब फिर वे सौभाग्यकी देवी लक्ष्मीको अपने साथ क्यों नहीं ले जाते?"

रासलीलामें प्रवेशके लिए लक्ष्मीदेवी अयोग्य

स्वरूप कहे,—शुन, प्रभु, कारण ईहार।
वृन्दावन क्रीड़ाते लक्ष्मीर नाहि अधिकार॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/१२१-१२२)

श्रीस्वरूप दामोदरने उत्तर दिया—"प्रभो! इसका कारण यह है कि सौभाग्यकी देवी लक्ष्मीजीका वृन्दावनकी लीलाओंमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।"

रासलीलामें केवल गोपियोंका अधिकार

वृन्दावन लीलाय कृष्णेर सहाय गोपीगण।
गोपीगण बिना कृष्णेर हरिते नारे मन॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/१२३)

"वृन्दावनकी मधुर लीलाओंमें गोपियाँ ही श्रीकृष्णकी सहायक हैं, क्योंकि गोपियोंके बिना अन्य कोई भी कृष्णके मनका हरण नहीं कर सकता।"

द्वारकामें श्रीकृष्णकी लक्ष्मीस्वरूपा सोलह हजार एक सौ रानियाँ तथा सत्यभामा और रुक्मिणीजी आदि आठ पटरानियाँ हैं। इन आठ पटरानियोंमेंसे ही जब किसी एककी भी वृन्दावनमें श्रीकृष्णकी लीलाओंमें प्रवेश करनेकी योग्यता नहीं है तब फिर सौलह हजार एक सौ आठ रानियोंका तो कहना ही क्या? वृन्दावनमें गोपियाँके द्वारा परकीयाभावसे श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है और द्वारकाकी महीषियोंमें श्रीकृष्णके प्रति स्वकीयाभाव है।

प्रेमके दो पक्ष होते हैं—मिलन और विरह। विरह ही मिलनकी उत्कण्ठाको बढ़ाकर मिलनकी पुष्टि करता है। जहाँ सदा मिलन ही मिलन है, वहाँ प्रेममें भावोंकी लहरियाँ नहीं उठती हैं। द्वारकामें महीषियाँ श्रीकृष्णकी विवाहिता पत्नियाँ हैं और सामाजिक दृष्टिसे उनके श्रीकृष्णसे मिलनमें कोई बाधा नहीं है, वे जब चाहे श्रीकृष्णसे मिल सकती हैं, इसलिए उनके प्रेममें नित्य नवीनताका अभाव है। यदि प्रेमका कोई कारण होता है, तब तो उस कारणके टूटनेसे प्रेम भी टूट जाता है। द्वारकाकी महीषियोंका श्रीकृष्णसे सम्बन्ध प्रेम विवाहपर आधारित है। परन्तु गोपियोंका श्रीकृष्णसे प्रेम किसी भी सामाजिक सम्बन्धकी अपेक्षा नहीं रखता है। उनका विवाह तो अन्य गोपोंसे हुआ है, परन्तु श्रीकृष्णसे तो उनका जन्मजात प्रेम है।

इसके अतिरिक्त द्वारकाकी प्रत्येक रानीके दस-दस पुत्र और एक कन्या है, इसलिए उन रानियोंका प्रेम अनेक भागोंमें विभाजित है। परन्तु गोपियोंकी कोई सन्तान नहीं हैं और न ही उनका अपने पतियोंसे कोई सम्बन्ध है। उनका तो केवल श्रीकृष्णसे ही अखण्ड प्रेम है।

जबसे गोपियोंका विवाह हुआ, तबसे वे परवधुएँ हो गयीं और श्रीकृष्ण परपुरुष हो गये। इसलिए वे स्वतन्त्र रूपसे श्रीकृष्णसे नहीं मिल सकतीं। उनके मिलनमें पति, सास-ससुर,

परिवारिकजन और लोक-मर्यादा आदि अनेकों बाधाएँ हैं। वे किसी छलसे या बहानेसे सदा श्रीकृष्णसे मिलनेके अवसर ढूँढ़ा करती हैं और इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी अपने मैया-बाबा और सखाओंसे छिपकर गोपियोंसे मिलनेके अवसर ढूँढ़ते रहते हैं। ये सब बाधाएँ मिलनकी तीव्र उत्कण्ठाको निरन्तर वर्धित करती रहती हैं और मिलनके आनन्दको कोटि-गुणा बढ़ा देती हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र हैं, तथापि ऐसे मिलनका आस्वादन करनेके लिए वे अपनी योगमाया द्वारा ऐसी लीलाएँ सम्पादित करते हैं। व्रजकी लीलाओंमें प्रवेशके लिए गोपीभाव ही एकमात्र योग्यता है।

एक बार रासलीलाकी महिमा सुनकर लक्ष्मीजीके हृदयमें भी उसमें प्रवेश करनेकी लालसा जाग उठी। परन्तु लक्ष्मीजीकी तो वृन्दावनमें ही प्रवेशकी योग्यता नहीं है। इसलिए उन्होंने यमुनाके उसपार बेलवनमें हजारों वर्षों तक तपस्या की। तब श्रीकृष्णने आकर उनसे पूछा—"तुम यह कठोर तपस्या किसलिए कर रही हो?" लक्ष्मीजीने कहा—"मैं आपसे वर प्राप्त करके रासलीलामें प्रवेश करना चाहती हूँ।" श्रीकृष्णने कहा—"अभी तुम्हारे लिए यह सम्भव नहीं है।" लक्ष्मीदेवीने पूछा—"क्यों सम्भव नहीं है?" श्रीकृष्णने कहा—"रासमें प्रवेश करनेके लिए गोपीदेह और गोपी अभिमान होना आवश्यक है। इस जन्मके पश्चात् तुम्हें वृन्दावनमें किसी गोपीके गर्भसे जन्म लेकर किसी गोपसे विवाह करना होगा। फिर जब तुम नित्यसिद्ध गोपियोंका आनुगत्य करके शुद्ध गोपी अभिमानमें स्थित होगी, तो ही तुम रासलीलामें प्रवेश पा सकोगी।

"जिन व्रजगोपियाँकी सन्ताने हैं, वे भी रासमें प्रवेश नहीं पा सकतीं। रासलीलामें वही गोपियाँ प्रवेश कर सकती हैं, जिनका अपने पतियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर तुम कैसे प्रवेश पा सकती हो? इसके लिए तुम्हें अपने पति नारायणके प्रति प्रेम-भाव और अपनेमें ब्राह्मणी होनेके

अभिमानका परित्याग करना होगा। तुम्हें अपने गोप पतिको धोखा देकर परकीयाभावका अवलम्बन करना होगा। इस प्रकार तुम गोपीभावमें स्थित होकर ही रासलीलामें प्रवेश कर सकती हो।"

लक्ष्मीदेवीने विरोध करते हुए कहा—"मैं अपने पति नारायणका परित्याग कैसे कर सकती हूँ? मैं नारायणको छोड़कर और अपने सतीत्वका त्यागकर किसी गोपसे विवाह नहीं कर सकती हूँ।" तब श्रीकृष्णने कहा—"जब तक तुम यह सब करनेके लिए तैयार नहीं होगी, तब तक तुम्हें रासलीलामें प्रवेश करनेके लिए प्रतीक्षा करनी होगी।"

इसलिए लक्ष्मीजी आज तक बेलवनमें तपस्या कर रही हैं और वे अभी तक इसकी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकी हैं। सभी लोग इस गोपीप्रेमकी अभिलाषा कर सकते हैं, किन्तु यह बहुत ही दुर्लभ वस्तु है, यहाँ तक कि लक्ष्मीजी, शङ्करजी, ब्रह्माजी आदि भी इसे प्राप्त नहीं कर सके हैं, तब फिर दूसरे लोगोंकी तो बात ही क्या है।

वृन्दावनमें तो श्रीकृष्णके मैया-बाबा, सखा और अन्य गोप और मातृतुल्य गोपियाँ भी उनसे बहुत प्रेम करती हैं, किन्तु श्रीस्वरूप दामोदरने केवल उनकी प्रेयसी गोपियोंका ही यहाँ वर्णन किया है।

श्रीमद्भागवतमें ऐसा वर्णन है—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥

(श्रीमद्भ० १०/१४/३२)

"नन्द महाराज, सभी गोप-गोपियाँ और व्रजमें वास करनेवाले पशु-पक्षी आदि प्राणी सभी महाभागा है अर्थात् उनके भाग्यकी कोई सीमा नहीं है, क्योंकि परमानन्द स्वरूप सनातन परब्रह्म उनके बन्धु बनकर उनके बीचमें अवतरित हुए है।"

सभी गोप भी श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं। नन्दबाबा पिताके रूपमें और गर्गाचार्य, भागुरि, शाण्डिल्य ऋषि आदि गुरुके रूपमें उन्हें आशीर्वाद देते हैं। सुदाम, सुबल, मधुमङ्गल और श्रीबलदेव प्रभु भी उनकी पुरुष रूपमें सेवा करते हैं। किन्तु जैसी सेवा श्रीमती राधिका करती हैं, वैसी सेवा कोई भी पुरुष रूपमें नहीं कर सकता। इसलिए जहाँ श्रीकृष्ण श्रीमती राधिका और गोपियोंके साथ लीलाएँ करते हैं, वहाँपर किसी भी पुरुषका प्रवेश वर्जित है।

कु
भृङ्ग आदि प्रियनर्म सखा जिनमें महाभावका कु
वे श्रीकृष्णकी इन लीलाओंमें दूरसे ही सहायता करते हैं, क्योंकि उनका भी कु
सभी गोपियाँ कु
श्रीस्वरूप दामोदरने कहा कि गोपियोंके अतिरिक्त अन्य किसीमें भी श्रीकृष्णका हृदय चुराकर उनपर शासन करनेकी योग्यता नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने भी श्रीमद्भागवतमें इस कथनकी पुष्टि की है।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्चय तद् वः प्रतियातु साधुना॥
(श्रीमद्भा॰ १०/३२/२२)

हे प्यारी गोपियो! मेरे साथ तुम्हारा मिलन सर्वथा निर्दोष और निर्मल—निजसुखकी कामनाके लेशसे भी रहित विशुद्ध प्रेममय है। तुमने घर-गृहस्थीकी दुष्कर बेड़ियोंको तोड़कर तथा लोक-मर्यादाका उल्लङ्घनकर मेरा भजन किया है। मैं देवताओं जैसी लम्बी आयु प्राप्त करके भी तुम्हारे इस प्रेम, त्याग और सेवाका बिन्दुमात्र भी बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ।

तुम अपने सौम्य-स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो, किन्तु मैं तो तुम्हारे प्रेमका सदा ऋणी ही हूँ और रहूँगा।

श्रीकृष्णने यह बात गोपियोंके अतिरिक्त अन्य किसीके लिए भी नहीं कही, इसीलिए श्रीस्वरूप दामोदरने केवल गोपियोंका ही वर्णन किया है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु महावदान्याय हैं और इसी गोपीप्रेमको प्रदान करनेके लिए वे इस धराधाममें अवतरित हुए। यदि किसीमें श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलकी रासलीलामें सेवा करनेकी तीव्र लालसा जाग्रत हो जाये, तो उसे रासमें प्रवेश करनेका सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा। ऐसी लालसाको जीवोंमें जाग्रत करनेके लिए ही श्रीमन् महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीराय रामानन्द, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीलरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीलभक्तिविनोद ठाकु
भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' और उनके परिकरों—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी आदि अनेकानेक महापुरुषोंको इस जगत्में भेजते हैं।

श्रीमन् महाप्रभुकी लक्ष्मीदेवीके क्रोधका कारण जाननेकी अभिलाषा

प्रभु कहे,—यात्रा-छले कृष्णेर गमन।
सुभद्रा आर बलदेव, सङ्गे दुई जन॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/१२४)

श्रीमन् महाप्रभुने पुनः श्रीस्वरूप दामोदरसे प्रश्न करते हुए कहा—"भगवान् श्रीकृष्ण रथ-यात्राका बहाना बनाकर श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्रादेवीके साथ गुण्डिचा मन्दिर (वृन्दावन) में यशोदा मैया, नन्दबाबा, गोप, गोपियों और अन्य सभी व्रजवासियोंसे मिलनेके लिए गये। वे श्रीबलदेव प्रभु और श्रीसुभद्राजीको अपने साथ इसलिए ले गये कि लक्ष्मीजीको यह सन्देह न हो कि वे वृन्दावन गये हैं। श्रीबलदेव प्रभु तो

श्रीकृष्णके साथ व्रजमें ग्यारह वर्ष तक रहे थे और श्रीसुभद्राजीका भी गोपियोंके प्रति अत्यधिक प्रेम भाव है, इसलिए वे उन दोनोंको अपने साथ ले गये। सर्वप्रथम श्रीकृष्ण नन्दभवनमें गये और अपने माता–पितासे भेंट करनेके पश्चात् श्रीबलदेव प्रभु और सुभद्राजीको नन्दभवनमें ही छोड़कर अपनी प्रियतमा गोपियोंके पास चले गये।

श्रीबलदेव और सुभद्राजी गोपियोंके साथ श्रीकृष्णकी गोपनीय लीलाओंको नहीं समझ पाते और न ही वे यह जान पाते हैं कि श्रीकृष्ण दिनमें सखाओंसे बहाना बनाकर और रात्रिमें बिना किसीको पता लगे अकेले गोपियोंसे मिलनेके लिए कभी वंशीवट, कभी सेवाकु

और कभी राधाकु

क्रीड़ा करते हुए कभी वे झूलेपर झूलते हैं, कभी खेल–खेलमें उनसे हार जाते हैं और कभी–कभी गोपियाँ चुपकेसे उनकी बाँसुरी चुरा लेती हैं। कभी–कभी वे गोपियोंके साथ श्यामकु

गोपियोंके साथ श्रीकृष्णकी अनेकानेक गोपनीय मधुर लीलाएँ होती हैं।

श्रीमन् महाप्रभुने आगे कहा—

> गोपी–सङ्गे जत लीला हय उपवने।
> निगूढ़ कृष्णेर भाव केह नाही जाने॥
> (चै॰ च॰ म॰ १४/१२५)

“उपवन और कु

मनोरम लीलाएँ अत्यन्त गोपनीय हैं और श्रीकृष्णकी कृपाके बिना कोई भी उनके भावको नहीं जान सकता।”

यशोदा मैया भी श्रीकृष्णकी इन गोपनीय लीलाओंको नहीं जानती हैं। केवल योगमाया पौर्णमासीदेवी, वृन्दादेवी, धनिष्ठा, और कु

जानती हैं। श्रीकृष्णके प्रियनर्मसखा सुबल, मधुमङ्गल आदि

इन लीलाओंके विषयमें कु
उन लीलाओंमें प्रवेश नहीं है। इसलिए श्रीसुभद्रादेवी और श्रीबलदेव प्रभु भी यह नहीं जान सके कि श्रीकृष्ण किस उद्देश्यसे वृन्दावन आये हैं। लक्ष्मीदेवी तो यह सोच रही थीं कि श्रीबलदेव प्रभु और सुभद्राजीके साथ श्रीजगन्नाथदेव घूमने गये हैं, और वे शीघ्र ही द्वारका लौट आयेंगे।

अतएव कृष्णेर प्राकट्ये नाहि किछु दोष।
तबे केन लक्ष्मीदेवी करे एत रोष॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/१२६)

अतएव प्रकट रूपसे तो श्रीजगन्नाथजीका कोई दोष श्रीलक्ष्मीके प्रति नहीं दिखायी देता, तो फिर लक्ष्मीदेवी जगन्नाथजीपर इतना क्रोध क्यों करती है?

श्रीस्वरूप दामोदरने उत्तर दिया—

स्वरूप कहे, प्रेमवतीर एई त' स्वभाव।
कान्तेर औदास्ये-लेशे हय क्रोधभाव॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/१२७)

"अपने प्रेमीके लेशमात्र भी उदासीन होनेपर प्रेमाविष्ट कान्ताका रुष्ट होना स्वभाविक ही है। इसलिए लक्ष्मीजीको मान हो गया।"

हेनकाले, खचित जाहे विविध रतन।
सुवर्णेर चौदोला करि' आरोहण॥

छत्र-चामर-ध्वजा पताकर गण।
नानावाद्य-आगे नाचे देवदासीगण॥

ताम्बूल-सम्पुट, झारी, व्यजन, चामर।
साथे दासी शत, हार दिव्य भूषाम्बर॥

अनेक ऐश्वर्य सङ्गे बहु-परिवार।
क्रु
(चै॰ च॰ म॰ १४/१२८-१३१)

तभी सभीने देखा कि लक्ष्मीदेवी रत्नोंसे जड़े स्वर्णकी पालकीमें सवार होकर वहाँ आयीं। उनकी दासियाँ छत्र, चाँवर और ध्वजा लेकर उनके साथ चल रही थीं। अन्य दासियाँ नाना प्रकारके वाद्ययन्त्र बजा रही थीं और देवदासियाँ नृत्य कर रही थीं। सैकड़ों दासियाँ पानकी पेटिका, जल छिड़कनेके पात्र, पङ्खे और चामर लेकर उनके चारों ओर चल रही थीं। स्वयं उन सभी दासियोंने दिव्य आभूषण पहन रखे थे। अनेक परिकरोंको लेकर अपने विशाल वैभवका प्रदर्शन करते हुए क्रोधसे भरी लक्ष्मीदेवी सिंहद्वारपर आयीं।

जगन्नाथेर मुख्य मुख्य यत भृत्यगणे।
लक्ष्मीदेवीर दासीगण करेन बंधने॥

बांधिया आनिया पाड़े लक्ष्मीर चरणे।
चोरे दण्ड करे, जेन लय नाना-धने॥

अचेतनवत् तारे करेन ताड़ने।
नानामत गालि देन भण्ड-वचने॥

लक्ष्मी-सङ्गे दासीगणेर प्रागल्भ्य देखिया।
हासे महाप्रभुर गण मुखे हस्त दिया॥

(चै॰ च॰ म॰ १४/१३२-१३५)

लक्ष्मीजीकी आज्ञासे उनकी दासियाँ श्रीजगन्नाथजीके मुख्य-मुख्य सेवकोंको पकड़कर रस्सियोंसे बाँधने लगीं। दासियोंने उन्हें बाँधकर लक्ष्मीदेवीके चरणोंमें डाल दिया। वह उन्हें इस प्रकार दण्ड देने लगीं, मानो उन्होंने उनका बहुत-सा धन चुरा लिया है। तब उन दासियोंने अचेतन (जड़) की भाँति नाना गालियाँ और अपशब्द कहते हुए उन्हें प्रताड़ित किया। लक्ष्मीदेवी और उनकी दासियोंका साहस और दक्षता देखकर महाप्रभु और उनके परिकर मुखको हाथसे ढककर हँसने लगे।

लक्ष्मीजीका गुण्डिचा मन्दिरकी ओर प्रस्थान

इसके उपरान्त लक्ष्मीजी अपनी दासियों सहित श्रीगुण्डिचा मन्दिरकी ओर जाने लगी। श्रीमन् महाप्रभु भी अपने सभी भक्तोंके साथ-साथ लक्ष्मीदेवीके भावोंको देखनेके लिए उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

दामोदर कहे, ऐछे मानेर प्रकार।
त्रिजगते काँहा देखि, शुनि नाहि आर॥

मानिनी निरुत्साहे छाड़े विभूषण।
भूमे बसि नखे लेखे, मलिन-वदन॥

पूर्वे सत्यभामार शुनि एवंविध मान।
व्रजे गोपीगणेर मान-रसेर निधान॥

इहाँ निज-सम्पत्ति सब प्रकट करिया।
प्रियेर ऊपर जाय सैन्य सजाइया॥

(चै॰ च॰ म॰ १४/१३६-१३९)

श्रीस्वरूप दामोदर कहने लगे—"ऐसा विचित्र मान तो मैंने तीनों लोकोंमें पहले कहीं भी न देखा और न ही सुना है। सब जगह तो देखा जाता है कि मानिनी दुःखी होकर अपने सब आभूषण उतारकर भूमिपर बैठ जाती है। क्रोध और क्षोभसे भरकर उसका मुख मलिन हो जाता है। वे अपने नखोंसे भूमिको कु
सत्यभामाजीने मान किया था तो उनकी भी ऐसी ही दशा हुई थी तथा व्रजगोपियोंके मानके विषयमें तो कहना ही क्या? उनका मान तो रसका निधान अर्थात् शिरोमणि है। किन्तु यहाँ तो लक्ष्मीजीमें इसके ठीक विपरीत दिखायी दे रहा है; वे तो अपनी सारी सम्पत्तिसे सज-धजकर सेनाके साथ प्रियके ऊपर आक्रमण करनेके लिए प्रस्तुत है। यह कैसा मान है?"

गोपियोंका मान

श्रीमन् महाप्रभुने पूछा—"व्रजगोपियोंका मान कितने प्रकारका है?"

श्रीस्वरूप दामोदरने कहा—"गोपियोंका मान तो सैकड़ों प्रकारका है। नायिकाके स्वभाव और प्रेमवृत्तिके बहुत-से भेद हैं और उन भेदोंके अनुरूप नायिकामें मानका उदय होता है। सभी प्रकारके मानका तो वर्णन करना सम्भव नहीं है, इसलिए एक-दो भेदका वर्णन करके मैं उनका दिग्दर्शन करा सकता हूँ।

गोपियोंका मान कभी तो किसी कारणसे और कभी बिना कारणके भी होता है। मान प्रेमकी उन्नत अवस्था है और यह स्थायीभावकी अवस्थामें प्रकट होता है। स्थायीभाव पाँच प्रकारके हैं और वे कभी बदलते नहीं हैं। स्थायीभावके साथ जब विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारीका मिलन होता है तब भक्तिरस उत्पन्न होता है। साधकके हृदयमें पहले रति उत्पन्न होती है और उसके कु
बाद गोलोक वृन्दावनके रागात्मिक भक्तोंकी कृपासे प्रेमका नित्य आधार 'स्थायीभाव' उसके हृदयमें प्रकट होता है।

प्रेमका स्वरूप क्या है? प्रेम टूटनेके सभी कारण उपस्थित होनेपर भी प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। प्रेममें स्वसुखकी लेशमात्र भी भावना नहीं होती है, उसमें केवल प्रेमी कैसे सुखी हो, इसी बातका विचार रहता है। गोपियोंका उद्देश्य है केवलमात्र श्रीकृष्णको प्रसन्न करना और श्रीकृष्णका उद्देश्य गोपियोंकी प्रसन्नता है। इस जगत्में बद्धजीवोंका परस्पर प्रेम निःस्वार्थ नहीं होता। इसलिए स्वार्थकी थोड़ी-सी हानि होनेपर प्रेमियोंका सम्बन्ध टूट जाता है।

प्रेमके उपरान्त स्नेहकी अवस्था आती है, जिसमें श्रीकृष्णको देखते ही भक्तका हृदय द्रवित हो जाता है और उसकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है। स्नेह भी

दो प्रकारका होता है—'घृतस्नेह' और 'मधुस्नेह'। श्रीमती राधिका और उनके यूथकी सखियोंका स्नेह 'मधुस्नेह' है और चन्द्रावली और उनके यूथकी सखियोंका स्नेह 'घृतस्नेह' है। 'मधुस्नेह' वाली गोपियाँ यह भाव रखती है कि 'श्रीकृष्ण मेरे हैं' और 'घृतस्नेह' वाली गोपियाँ सोचती हैं कि 'मैं श्रीकृष्णकी हूँ'।

स्नेहके बाद प्रणयभाव उदित होता है जिसमें गोपियोंका स्नेह इतना अधिक हो जाता है कि वे सोचती हैं कि वे और श्रीकृष्ण दो शरीर और एक आत्मा हैं।

प्रणयके बाद मानकी अवस्था आती है। किन्तु कभी-कभी मान प्रणयकी अवस्थासे पहले भी उदित हो जाता है। गोपियोंमें यह दृढ़ विश्वास है कि यदि वे मान करेंगी, तो श्रीकृष्ण उन्हें अवश्य ही मनाने आयेंगे; यही उनके मानका हेतु है।

श्रीमती राधिकाजीमें असंख्य भाव हैं। उनमें मुख्यतः तीन सौ साठ प्रकारके भाव हैं। इसलिए गोपियाँ भी तीन सौ साठ प्रकारकी हैं। सभी गोपियोंका भाव भिन्न-भिन्न है और वे सभी भाव श्रीमती राधिकामें पाये जाते हैं। सभी गोपियाँ श्रीमती राधिकाजीकी कायव्यूहा हैं। गोपियोंके सभी भाव राधाजीकी इच्छासे प्रकाशित होते हैं। ललिताजी प्रखरा हैं, कु

जब श्रीस्वरूप दामोदरने यह सब बतला दिया तब श्रीमन् महाप्रभुने कहा—"मैं इससे और आगेका भाव सुनना चाहता हूँ।"

श्रीस्वरूप दामोदरने कहा—"जिन गोपियोंका भाव ऐसा है कि 'मैं श्रीकृष्णकी हूँ', जब वे गोपियाँ मानकी अवस्थामें होती हैं, तब वे श्रीकृष्णको कठोर शब्द नहीं कहतीं हैं, अपितु वे केवल रोती रहती हैं। दूसरी ओर जिन गोपियोंका यह भाव है कि 'श्रीकृष्ण मेरे हैं', वे जब मान करती हैं,

तब वे आँखोंसे आँसू बहाते हुए क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णको अपने कटु-वचनोंके बाणोंसे बींध डालती हैं।

एक बार जब श्रीकृष्ण राधाजीके पास आये, तो उनके मुखमण्डल और भुजाओंपर काले और लाल रङ्गोंके चिह्न थे। यह देखकर राधाजीने सोचा कि ये चिह्न अन्य गोपियोंके साथ विलास करनेके कारण हैं। तब राधाजीको मान हो गया और वे बड़ी मीठी वाणीमें बोलीं—'अहो! आप आ गये, आप बहुत थकेसे लग रहे हैं। तनिक विश्राम कीजिये।' यह कहकर उन्हें बैठनेका स्थान दिया और उनके मुखकी ओर देखकर कटाक्ष करते हुए बोलीं—'आप ठीक महादेव शङ्करजीके समान बहुत सुन्दर लग रहे हैं।' नील-लोहित रुद्र शङ्करजीका वर्ण नीला, काला और लाल—इन तीन रङ्गोंका मिश्रण है, इसलिए श्रीराधाजीने श्रीकृष्णकी तुलना शङ्करजीसे की।"

श्रीमन् महाप्रभु और श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी व्रजवासियोंके भावोंकी आलोचना करते-करते इतने तन्मय हो गये कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कब लक्ष्मीजीका रथ गुण्डिचा मन्दिर पहुँच गया। (अब लक्ष्मीजीके गुण्डिचा मन्दिर पहुँचनेपर जो लीला हुई, उसका वर्णन किया जा रहा है) जब लक्ष्मीजीने देखा कि श्रीकृष्ण नीलाचल (द्वारका) छोड़कर यहाँ सुन्दराचल (वृन्दावन) में विराजमान हैं, तो सहसा उनका क्रोध बढ़ गया।

श्रीवास हासिया कहे,—शुन, दामोदर।
आमार लक्ष्मीर देख सम्पत्ति विस्तर॥

वृन्दावनेर सम्पद् देख,—पुष्प किसलय।
गिरिधातु शिखिपिच्छ-गुञ्जाफल-मय॥

(चै॰ च॰ म॰ १४/२०३-२०४)

श्रीवास ठाकु
प्रिय बन्धो! मेरी लक्ष्मीजीकी अपार ऐश्वर्य-सम्पत्तिका विस्तार तो देखो! वृन्दावनकी सम्पत्ति तो केवल कु
गिरिधातु, मोरपङ्ख और गुञ्जा हैं।

वृन्दावनमें श्रीकृष्णके सिरपर स्वर्णका मुकु
वे वहाँ केवल सूखे बाँससे बनी हुई बाँसुरी, मोरपङ्ख, पीताम्बर और पुष्पोंकी माला ही धारण करते हैं।"

वृन्दावन देखिबारे गेला जगन्नाथ।
शुनि' लक्ष्मीदेवीर मने हइल आसोयाथ॥

एत सम्पत्ति छाड़ि केने गेला वृन्दावन।
ताँरे हास्य करिते लक्ष्मी करिला साजन॥

(चै॰ च॰ म॰ १४/२०६)

'ऐसे वृन्दावनको श्रीजगन्नाथजी देखने गये हैं'—यह बात सुनकर मेरी स्वामिनी श्रीलक्ष्मीका मन दुःखित हो जाता है। इतनी सम्पत्ति तथा ऐश्वर्यको छोड़कर श्रीजगन्नाथजी वृन्दावनको देखने क्यों गये हैं? इस बातपर उनकी हँसी उड़ानेके लिए ही लक्ष्मीजी अपने पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पत्तिके साथ पधारी हैं।

तब लक्ष्मीजीकी दासियोंने भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके सेवकोंसे कहा—

'तोमार ठाकु
पत्र-फल-फूल-लोभे गेला पुष्पबाड़ी॥

एई कर्म करे काँहा विदग्ध-शिरोमणि?
लक्ष्मीर अग्रेते निज प्रभुरे देह' आनि'॥

(चै॰ च॰ म॰ १४/२०७-२०८)

"तुम्हारे प्रभु जगन्नाथ लक्ष्मीजीका इतना ऐश्वर्य छोड़कर पत्र-फल-फूलके लोभसे पुष्प-वनमें चले गये। तुम्हारे स्वामी तो विदग्ध (चतुर) शिरोमणि हैं, तथापि वे ऐसी मूर्खता क्यों

करते हैं? शीघ्र ही अपने स्वामीको लक्ष्मीजीके समक्ष प्रस्तुत करो।"

एत बलि' लक्ष्मीर सब दासीगणे।
कटि-वस्त्रे बान्धि' आने प्रभुर निजगणे॥
लक्ष्मीर चरणे आनि' कराय प्रणति।
धन-दण्ड लय, आर कराय मिनति॥
रथेर उपरे करे दण्डेर ताड़न।
चोर प्राय करे जगन्नाथेर सेवकगण॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/२०९-२११)

इतना कहकर लक्ष्मीकी दासियोंने श्रीजगन्नाथजीके सेवकोंको कमरमें वस्त्र डालकर उन्हें बाँध दिया और लक्ष्मीके चरणोंमें लाकर उन्हें प्रणाम कराया, दण्डके रूपमें उनका धन ले लिया तथा उनसे अनुनय-विनय करायी। श्रीजगन्नाथजीके रथपर भी लाठियोंसे प्रहार किया। उन्होंने जगन्नाथजीके सेवकोंके साथ चोरों जैसा व्यवहार किया।

सबा भृत्यगण कहे,—जोड़ करि हात।
कालि आनि दिब तोमार आगे जगन्नाथ॥
(चै॰ च॰ म॰ १४/२१२)

अन्तमें भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके सेवकोंने लक्ष्मीजीके समक्ष आत्मसमर्पण करते हुए हाथ जोड़कर कहा कि वे कल ही भगवान् श्रीजगन्नाथजीको उनके समक्ष प्रस्तुत कर देंगे।

जब श्रीजगन्नाथजीके सेवकोंने यह प्रतिज्ञा की, तब लक्ष्मीदेवीने उनपर कर लगाकर, सजा देकर उन्हें छोड़ दिया और स्वयं शान्त होकर अपने घर चली गयी।

तब श्रीवास पण्डितने श्रीस्वरूप दामोदरसे कहा—"मेरी लक्ष्मीजीकी सम्पत्तिका वर्णन करना वाक्यों द्वारा सम्भवपर नहीं है। आपकी गोपियाँ तो अपनी गायोंके दूधसे घी, दही,

मक्खन आदि बनाकर उसीसे अपना जीवन-यापन करती हैं। वे कु
बड़े-बड़े महल नहीं हैं। वे वनके पुष्पोंसे अपने आभूषण बनाती हैं, जबकि द्वारकावासियोंके पास स्वर्ण, हीरे, मोती और रत्नोंके आभूषण हैं। और मेरी ठाकु
सिंहासनपर बैठती हैं।"

श्रीनारदजीके स्वभाववाले श्रीवास पण्डितके वचनोंको सुनकर श्रीमन् महाप्रभुके भक्त हँस पड़े।

> प्रभु कहे,—"श्रीवास, तोमार नारद-स्वभाव।
> ऐश्वर्य भावे तोमाते ईश्वर-प्रभाव॥
>
> इँहो दामोदर-स्वरूप—शुद्ध-व्रजवासी।
> ऐश्वर्य ना जाने इँहो शुद्धप्रेमे भासि॥"

श्रीमन् महाप्रभुने कहा—"श्रीवास! तुम्हारा स्वभाव श्रीनारद जैसा है। ईश्वरके प्रभावसे तुम्हें ऐश्वर्य भाव ही अच्छा लगता है। किन्तु यह स्वरूप दामोदर तो शुद्ध व्रजवासी है। यह ऐश्वर्यको कु
रहता है।"

वृन्दावनका ऐश्वर्य

> स्वरूप कहे,—श्रीवास, शुन सावधाने।
> वृन्दावनसम्पद् तोमार नाहि पड़े मने॥
>
> वृन्दावने साहजिक ये सम्पतसिन्धु।
> द्वारका-वैकु
>
> (चै॰ च॰ म॰ १४/२१८-२१९)

श्रीस्वरूप दामोदरने कहा—"श्रीवास! जरा ध्यान देकर सुनो। तुम अप्राकृत वृन्दावनके ऐश्वर्यको नहीं जानते हो। वृन्दावनका सहज ऐश्वर्य तो सागरके समान विशाल है और द्वारका और वैकु
समान भी नहीं है।

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/५६)

परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका जितना ऐश्वर्य है, वह सब उनके निज धाम वृन्दावनमें पूर्ण रूपसे प्रकाशित है। वहाँकी भूमि चिन्तामणिमयी है और समस्त भवन रत्नोंसे निर्मित हैं। वहाँकी दासियाँ तक अपने चरणोंमें चिन्तामणिकी बनी नूपुर पहनती हैं। वहाँके सभी वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, परन्तु व्रजवासी उन वृक्षोंसे केवल पुष्पों और फलोंकी ही कामना करते हैं। वहाँकी असंख्य गौएँ कामधेनु हैं, परन्तु व्रजवासी उनसे केवल दूधकी ही याचना करते हैं, अन्य किसी धनकी नहीं। व्रजवासियोंका साधारण बोलना भी गीत है, उनका स्वाभाविक चलना ही नृत्य है। उस धामका जल अमृत है और चिन्मय ज्योतिके द्वारा वह धाम स्वतः प्रकाशित है। वहाँकी लक्ष्मियाँ अर्थात् गोपियाँ तो अपने अद्भुत गुणोंसे वैकु
श्रीकृष्णकी वंशी ही वहाँपर प्रिय सखीका कार्य करती है।

श्रीकृष्ण रसिकशेखर हैं, इसीलिए वे परम उन्नत उज्ज्वल प्रेमका रसास्वादन करना चाहते हैं, वे किसी दूसरे भाव और प्रेमसे पूर्णता सन्तुष्ट नहीं होते है। यह उन्नत उज्ज्वल रस केवल वृन्दावनकी गोपियोंमें ही है, इसलिए श्रीकृष्ण द्वारका धाममें प्रकट ऐश्वर्यको छोड़कर माधुर्यमय वृन्दावनमें सदा निवास करते हैं।"

श्रीस्वरूप दामोदरसे वृन्दावनकी महिमा सुननेके पश्चात् श्रीवास पण्डितका भाव परिवर्त्तित हो गया। उनमें श्रीकृष्णके प्रिय सखा मधुमङ्गलका आवेश आ गया, वे व्रजके भावमें विभोर होकर नृत्य करने लगे और बगल बजाते हुए

जोर-जोरसे हँसने लगे। श्रीराधाजीके शुद्धप्रेमकी महिमा सुनकर श्रीमन् महाप्रभु भी प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करने लगे और श्रीस्वरूप दामोदरजी कीर्त्तन करने लगे।

ऐश्वर्य और माधुर्य भावमें भेद

यहाँ यह प्रश्न होता है कि यदि श्रीकृष्णका व्रजवासियोंसे इतना प्रेम है, तब वे उन्हें विरहके तापमें जलते हुए छोड़कर मथुरा और द्वारका क्यों चले गये? इसका समाधान यह है कि श्रीकृष्ण अपने किसी भी भक्तको नहीं छोड़ सकते हैं, इसलिए वे मथुरा और द्वारकाके भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए वहाँ गये। तब यह प्रश्न उठता है कि वे मथुरा और द्वारकाके भक्तोंको आनन्दित करके वृन्दावन क्यों नहीं लौट आये? इसका कारण यह है कि यदि श्रीकृष्ण उसी समय वृन्दावन लौट आते तो जरासन्ध यह जान जाता कि श्रीकृष्ण नन्दबाबा और यशोदाके पुत्र हैं और श्रीकृष्णसे कंसकी मृत्युका बदला लेनेके लिए वह व्रजपर आक्रमण कर देता। व्रजमें सुरक्षाके लिए किसी प्रकारकी भी व्यवस्था नहीं थी—न तो कोई किला ही था और न ही नन्दबाबाके पास कोई सेना ही थी, इसलिए जरासन्ध बड़ी सरलतासे व्रजको तहस-नहस करके नन्दबाबा और यशोदा मैयाको बन्दी बना लेता, जिस प्रकार कंसने श्रीवसुदेव और देवकीजीको बन्दी बना लिया था। यह तो श्रीकृष्णका व्रजमें न लौटनेका बाह्य कारण था, किन्तु इसके और भी बहुत-से गूढ़ कारण हैं।

यहाँ एक और प्रश्न होता है कि श्रीकृष्ण व्रजवासियों और विशेषकर गोपियोंके विरह-तापका प्रशमन करनेके लिए कभी-कभी तो वृन्दावन आ सकते थे? इसका कारण यह है कि गोपियोंका शरीर ही विरहसे बना है। श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें थे, तब भी गोपियोंको उनसे क्षणमात्रका विरह भी युगोंके समान प्रतीत होता था। श्रीकृष्णके मथुरा जानेपर

उनके विरहका ताप बहुत अधिक बढ़ गया था। आगमें तपकर लाल हुए तवेके ऊपर यदि एक बूँद जल डाला जाये, तो वह उसी क्षण ही 'छन्न' शब्दकर भाप बनकर उड़ जायेगा। इससे तवेका ताप तो कम नहीं होता, अपितु बढ़ जाता है। ऐसे ही गोपियोंका विरह ताप तपे हुए तवेके समान है और श्रीकृष्णका उनसे कु
एक बूँदके समान ही है। जो उनके विरह-तापको और अधिक बढ़ा देगा।

कु
सोये हुए मथुरावासियोंको नवनिर्मित द्वारकामें पहुँचा दिया था और इस प्रकार वे असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। अतएव वे नन्दबाबा, यशोदा मैया, अपने सखाओं और गोपियों आदिको द्वारका क्यों नहीं ले गये? द्वारकामें उनके पास न केवल अपनी रानियोंके लिए ही अपितु श्रीवसुदेव-देवकीजी, अक्रूर, उद्धवजी आदिके लिए भी अनेकों विशाल महल थे। जब वहाँपर लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें मथुरावासी रहते थे, तब श्रीकृष्ण वहींपर व्रजवासियोंके रहनेकी भी सुन्दर व्यवस्था कर सकते थे?

श्रीकृष्ण द्वारा वैसा नहीं करनेका कारण यह है कि मथुरा और द्वारका ऐश्वर्य भूमि है और वृन्दावन माधुर्य भूमि है। ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों एक ही साथ एक ही स्थानमें नहीं रह सकते हैं। वृन्दावनका भाव कभी भी द्वारकामें और द्वारकाका भाव कभी भी वृन्दावनमें प्रकाशित नहीं हो सकता। दोनों भाव एक दूसरेके विपरीत हैं और उन्हें एक साथ जोड़नेका नाम 'रसाभास' है। इसके लिए सर्वप्रथम यह समझना आवश्यक है कि माधुर्य और ऐश्वर्य भाव क्या हैं?

द्वारकामें पूर्ण वैभव है और वहाँपर यदुवंशी श्रीकृष्णको पूर्ण परमेश्वरके रूपमें मानते हैं। कभी-कभी श्रीकृष्ण वहाँपर चतुर्भुज रूप भी धारण करते हैं।

दूसरी ओर वृन्दावनमें सदैव माधुर्य भाव ही प्रकाशित होता है। ऐश्वर्य भाव माधुर्य द्वारा ढका रहता है। वहाँ श्रीकृष्णने व्रजमें मैया यशोदाके गर्भसे जन्म लिया था। छोटे-से शिशुके रूपमें अपनी मैयाकी सहायताके बिना वे करवट भी नहीं ले सकते थे। थोड़ी-थोड़ी देरमें उन्हें भूख लगती थी। कभी भूख लगनेपर जब उन्हें मक्खन नहीं मिलता था, तो क्रोधमें आकर वे दहीकी मटकी भी फोड़ देते थे और कभी वे व्रजगोपियोंके घरोंसे मक्खन चुराते थे। एक बार अपने ही घरमें दहीकी मटकी फोड़नेपर माँ यशोदाने श्रीकृष्णको ऊखलसे बाँध दिया था। यशोदा मैया सदा श्रीकृष्णको अपनी कोखसे जन्मा पुत्र ही मानती हैं और उनके हृदयमें श्रीकृष्णके प्रति पूर्णब्रह्म-परमेश्वरका भाव कभी भी नहीं आता है। यही माधुर्य भाव है। यदि वे मानतीं कि श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं, तो वे कृष्णको कदापि डाँट-डपट नहीं सकती थीं।

वृन्दावनको माधुर्य भूमि कहनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि वहाँ ऐश्वर्यका अभाव है। गोलोक वृन्दावन समस्त लोकोंका मूल है और अन्यान्य सभी लोकोंमें प्रकाशित ऐश्वर्य वृन्दावनके ऐश्वर्यका अंशमात्र है। परन्तु वृन्दावनमें माधुर्य भाव इतना प्रबल है कि वह ऐसे ऐश्वर्यको भी आच्छादित करके केवल लीलाके उपयुक्त समयपर ही उसका प्रकाश होने देता है। वृन्दावनमें ऐश्वर्य भाव होनेपर भी वहाँ श्रीकृष्ण एक साधारण बालक जैसी नरवत् लीला करते हैं। उदाहरणके लिए पूतना राक्षसी एक बहुत सुन्दर स्त्रीका वेश बनाकर गोकु

'प्रिय पुत्र' कहकर अपनी गोदमें लेकर स्तनपान कराने लगी। वह अपने स्तनोंमें कालकूट विष लगाकर उन्हें मारनेके उद्देश्यसे व्रजमें आयी थी। श्रीकृष्णने उसे देखते ही अपने नेत्र बन्द कर लिये, मानो उससे डर गये हों, और फिर

उसका स्तनपान करने लगे। फिर श्रीकृष्ण स्तनपान करनेके साथ-साथ ही पूतनाके प्राणोंका भी पान करने लगे। स्तनोंमें भीषण पीड़ा होनेसे वह जोर-जोरसे चिल्लाने लगी—"मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो।" परन्तु दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली पूतना श्रीकृष्णसे स्वयंको छुड़ा नहीं पायी। वह अपने प्राण बचानेके लिए अपने उल्लूकवाले वास्तविक रूपमें आकर आकाशमें उड़ी, परन्तु श्रीकृष्णने आसानीसे उसके प्राण हर लिये। भगवान् श्रीकृष्णने एक छोटे-से असहाय शिशुके रूपमें ही ऐसी बलशाली पूतनाका वध करके अपनी भगवत्ता और ऐश्वर्यका परिचय दिया।

श्रीकृष्ण जब मात्र सात वर्षके ही थे, तब उन्होंने मुस्कराते हुए सात दिनों तक गोवर्धन पर्वतको अपनी कनिष्ठ अङ्गुलीपर ऐसे उठाये रखा, जैसे कि एक हाथी अपनी सूँड़में कमलके फूलको उठा लेता है। श्रीकृष्णने त्रिभङ्गललित मुद्रामें खड़े होकर गोवर्धनको धारण किया। सभी ग्वालबाल भी अपनी-अपनी लाठियाँ लगाकर गोवर्धनको रोकते हुए यह सोच रहे थे कि उन्होंने ही लाठियोंके द्वारा गोवर्धनको रोक रखा है। नन्द महाराज अपने इष्ट भगवान् श्रीनारायणसे प्रार्थना करने लगे—"हे नारायण! कृपा करके इस पवर्तको नीचे मत गिरने देना।" और गोपियोंकी तो बात ही क्या है? वे तो स्वयं ही श्रीकृष्णकी शक्ति हैं। राधाजीने अपनी तिरछी चितवनसे गोवर्धनको देखते हुए कहा—"यदि तुम नीचे आये तो जलकर राख हो जाओगे।" इस प्रकार सभी अपने-अपने भावानुसार सहायता कर रहे थे और सोच रहे थे कि उनकी सहायताके बिना श्रीकृष्ण अकेले गोवर्धन धारण नहीं कर सकते।

श्रीकृष्णने विशाल रूप या चतुर्भुज रूप धारण किये बिना ही गोवर्धन पर्वतको उठाकर अपना ऐश्वर्य प्रदर्शन

किया। भगवान्‌की नरवत् लीलाओंमें यदि ऐश्वर्यका प्रदर्शन हो, तो भी वे सभी माधुर्यमय लीलाएँ ही कहलाती हैं। वृन्दावनमें श्रीकृष्ण सभी गोपोंके सखा रूपमें, गोपियोंके लिए कान्त स्वरूपमें और सभी मातृतुल्य गोपियोंके लिए पुत्र रूपमें हैं।

द्वारकामें यह भाव नहीं हैं, वहाँपर केवल ऐश्वर्य भाव ही प्रधान रूपमें प्रकटित है। द्वारकामें श्रीकृष्णका क्षत्रिय अभिमान है और वे वहाँ श्रीवसुदेव और देवकीजीके पुत्र हैं। वृन्दावनमें उनका गोप अभिमान है और वे स्वयंको नन्दबाबा और यशोदाका पुत्र मानते हैं। यदि मथुरावासी और व्रजवासी द्वारकामें एक साथ रहते, तो श्रीकृष्ण स्वयंको किसका पुत्र कहते? द्वारकामें श्रीकृष्ण राजा हैं, इसलिए वे अपने सखाओंके साथ गोचारणके लिए नहीं जा सकते। वे रत्न जड़ित स्वर्ण मुकु
सकते। सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके वहाँ होनेसे वे गोपियोंको रासमें बुलानेके लिए वंशीवादन नहीं कर सकते। यदि सभी गोप और गोपियाँ द्वारकामें आ जाते, तो श्रीकृष्णके दोनों भावोंका सामञ्जस्य करनेसे रसाभास दोष हो जाता।

वृन्दावनका उन्नत भाव द्वारकामें कभी भी उदित नहीं हो सकता। वृन्दावनमें श्रीकृष्ण मोरपङ्ख और मुरली धारण करके अपने 'मन्मथ-मन्मथ' त्रिभङ्ग ललित स्वरूपका प्रदर्शन करते हैं, जो कि साक्षात् कामदेवको भी मोहित करनेवाला है। श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठ लीलास्थली गिरिराज गोवर्धन और उनकी मधुर लीलाओंका सम्पादन करनेवाली वृन्दादेवी व्रज छोड़कर द्वारका कभी नहीं जाती। द्वारकामें श्रीकृष्ण रास-लीला नहीं कर सकते। इसलिए गोपियाँ कभी भी द्वारका नहीं जायेंगी और श्रीकृष्ण भी अपने पूर्ण स्वरूपमें वहाँ नहीं

हो सकते हैं। वे वहाँपर अपने प्रकाश वासुदेवके रूपमें हैं, क्योंकि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरका स्वरूप और वृन्दावनका कभी भी त्याग नहीं करते हैं।

एकादश अध्याय

(श्रीमन् महाप्रभुकी शिक्षाएँ)

वैष्णवोंमें तारतम्य

भगवान् श्रीजगन्नाथदेवकी रथ-यात्राका उत्सव नौ दिन तक चला। श्रीमन् महाप्रभुने गुण्डिचा मन्दिरके निकट ही 'जगन्नाथ वाटिका' नामक एक बड़े पुष्प उद्यानमें भक्तोंके साथ वास किया। श्रीमन् महाप्रभु प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके भगवान् श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करते और मन्दिरके प्राङ्गणमें बहुत देर तक भक्तोंके साथ नृत्य-कीर्त्तन करते। फिर वे भक्तोंको साथ लेकर पासके उद्यानमें नृत्य-कीर्त्तन करते। श्रीमन् महाप्रभुके दर्शनोंसे वहाँके वृक्ष और लताएँ प्रफु
पुष्पोंकी सुगन्धसे आकृष्ट होकर भौंरोंके झुण्ड-के-झुण्ड उन वृक्षोंपर गुञ्जार करने लगते, शुक-पिक आदि पक्षी मधुर कलरव करने लगते और मन्द-मन्द सुगन्धित समीर बहने लगती। वहाँ विचरण करते हुए श्रीमन् महाप्रभुको लगा कि वे वृन्दावनमें हैं, श्रीकृष्ण द्वारकासे वृन्दावन लौट आये हैं और वहाँ श्रीश्रीराधाकृष्णकी मधुर लीलाएँ हो रही हैं। उनके हृदयमें यह स्फूर्ति होनेसे उनका विरह भाव दूर हो गया। वे स्वयंको श्रीराधाजीकी किङ्करी मानकर अपने आश्रय विग्रह श्रीराधाजीके साथ श्रीकृष्णके मिलनके आनन्द सागरमें निमग्न हो गये। इसी रसमें डूबकर उन्होंने भक्तोंके साथ उद्यानमें नृत्य-कीर्त्तन किया। एक-एक वृक्षके नीचे वासुदेव दत्त आदि भक्त एक-एक गीत गाते और श्रीमन् महाप्रभु वहाँ परम आवेशमें आकर नृत्य करते। कभी वक्रेश्वर पण्डित

नृत्य करते, तो उन्हें देखकर श्रीमन् महाप्रभु गान करने लगते। इस प्रकार बहुत देर तक उद्यानमें लीलाएँ करते और फिर वे सभी भक्तोंको लेकर नरेन्द्रसरोवरमें जल-क्रीड़ा करते। जल-क्रीड़ाके पश्चात् वे भक्तोंके साथ उद्यानमें आकर प्रसाद सेवा करते।

इस प्रकार गुण्डिचा मन्दिरमें वृन्दावनकी लीलाओंका स्मरण और कीर्त्तन करनेके पश्चात् श्रीजगन्नाथदेवकी मूल मन्दिरमें पुनः लौटनेकी रथ-यात्रा प्रारम्भ हुई। वापिस रथ-यात्रा (उल्टा रथ) के समय भी श्रीमन् महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ श्रीजगन्नाथदेवके रथके आगे नृत्य एवं कीर्त्तन करते हुए जा रहे थे।

रथ-यात्रा उत्सवके उपरान्त बङ्गालसे आये भक्तोंने श्रीमन् महाप्रभुसे भेंट करके लौटनेकी अनुमति माँगी। कु ग्रामके सत्यराज खाँन और उनके सुपुत्र रामानन्द वसुने श्रीमन् महाप्रभुसे प्रश्न किया—

“गृहस्थ विषयी आमि, कि मोर साधने।
श्रीमुखे करेन आज्ञा, निवेदि चरणे॥
(चै० च० म० १५/१०३)

“प्रभो! हम गृहस्थ हैं और विषयोंमें लिप्त हैं। आपके चरणकमलोंमें निवेदन है कि आप अपने श्रीमुखसे हमारे कल्याणके लिए उचित भक्ति-साधनका निर्देश कीजिये।” यह प्रश्न उन्होंने न केवल अपने लिए अपितु सभी जीवोंके कल्याणके लिए पूछा।

प्रभु कहेन—‘कृष्णसेवा’, ‘वैष्णव-सेवन’।
निरन्तर कर कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन॥
(चै० च० म० १५/१०४)

श्रीचैतन्य महाप्रभुने उत्तर दिया—“श्रीकृष्णकी सेवा, वैष्णवोंकी सेवा और निरन्तर कृष्णनामका सङ्कीर्त्तन करना ही गृहस्थ वैष्णवोंके लिए एकमात्र कर्त्तव्य है।”

सत्यराज खाँन और रामानन्दने सोचा कि श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्त्तन और श्रीकृष्ण-सेवाको समझना तो सरल है। अकेला मनुष्य जब कीर्त्तन करता है, तो वह कीर्त्तन कहलाता है और जब बहुत-से भक्त एक स्वरूपसिद्ध भक्तके आनुगत्यमें कीर्त्तन करते हैं, तब वह सङ्कीर्त्तन कहलाता है। श्रीकृष्णकी प्रातःकालसे सायंकाल तक सेवा-पूजा करना, जैसे कि आरती करना, श्रीविग्रहको स्नान कराना, समयानुसार भोग निवेदन करना आदि श्रीकृष्णकी सेवा है। परन्तु हम यह नहीं जानते हैं कि वैष्णव कौन है? इसलिए वैष्णव-सेवा बहुत कठिन है।

सत्यराज बले,—"वैष्णव चिनिब केमने?
के वैष्णव, कह ताँर सामान्य लक्षणे॥"

तब सत्यराज खाँनने श्रीमन् महाप्रभुसे पूछा—"हम वैष्णवको कैसे पहचानेंगे? कृपया हमें बतलाइये कि वैष्णव कौन है और उनके सामान्य लक्षण क्या हैं?"

प्रभु कहे,—जाँर मुखे शुनि एकबार।
कृष्णनाम, सेई पूज्य,—श्रेष्ठ सबाकार॥
(चै॰ च॰ म॰ १५/१०६)

श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा—"जो व्यक्ति एक बार भी अपने मुखसे कृष्णनामका उच्चारण करता है, वह सबका पूज्य वैष्णव है और सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

एक कृष्णनाम करे सर्वपाप क्षय।
नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय॥
(चै॰ च॰ म॰ १५/१०७)

एक कृष्णनाम समस्त पापोंका नाश कर देता है। नवधाभक्ति भी कृष्णनाम लेनेसे ही पूर्ण होती है।"

नामापराधका वर्जन करके एकमात्र कृष्णनामका आश्रय करनेसे जीवोंके समस्त पाप क्षय हो जाते हैं और उनकी

पाप-पुण्यमूलक प्राकृत भोगवासनाका सम्पूर्ण विनाश हो जाता है। श्रीविष्णुके श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनको नवधाभक्ति कहते हैं। केवल कृष्णनामके भजनसे ही नवधाभक्ति पूर्णता लाभ करती है। श्रीमन् महाप्रभुने आगे कहा—

दीक्षा-पुरश्चर्या-विधि अपेक्षा ना करे।
जिह्वा-स्पर्शे आचण्डाले सबारे उद्धारे॥

आनुषङ्ग-फले करे संसारेर क्षय।
चित्त आकर्षिया कराय कृष्णे प्रेमोदय॥

(चै॰ च॰ म॰ १५/१०८-१०९)

"श्रीकृष्णनाम दीक्षा ग्रहण करनेकी और पुरश्चर्या अर्थात् त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) पञ्चाङ्ग (नित्य पूजा, जप, तर्पण, होम और ब्राह्मण भोज) कर्मोंकी अपेक्षा नहीं रखता। कृष्णनामका जिह्वासे स्पर्श होनेसे निम्न जातिसे सम्बन्धित व्यक्ति (चाण्डाल) भी मुक्त हो जाता है। कृष्णनाम इतना मधुर है कि वह साधकके हृदयको आकर्षित करके उसमें कृष्णप्रेमका उदय करा देता है और आनुषङ्गिक रूपसे उसके संसारके बन्धनको भी काट देता है।"

इसको प्रमाणित करनेके लिए श्रीमन् महाप्रभुने शास्त्रका एक श्लोक कहा—

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमनसामुच्चाटनं चांहसा-
माचण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मुक्तिश्रियः।
नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोहयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

(चै॰ च॰ म॰ १५/११०)

भगवान् श्रीकृष्णका पवित्र नाम सन्तो और मुक्त लोगोंको आकर्षित करता है। यह पाप कर्मोंके फलका विनाश कर देता है और इतना कृपालु है कि चण्डाल व्यक्तिके आरम्भ

करके (केवल मूक व्यक्तिके अतिरिक्त)[१] सभीके लिए सुलभ है। यह चाण्डालको भी पवित्र करके मुक्त कर सकता है। भगवान् श्रीकृष्णका पवित्र नाम मुक्तिदाता और श्रीकृष्णके समान ही शक्तिशाली है। इस पवित्र नामका जिह्वासे स्पर्श होते ही तुरन्त इसका परिणाम दिखायी देता है। इन नामोंका जप करना दीक्षा, धार्मिक क्रियाओं और पुरश्चर्या आदि पर निर्भर नहीं करता। यह नाम अपनेमें सम्पूर्ण है।

अतएव जाँर मुखे एक कृष्णनाम।
सेई त' वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान॥"

इसलिए जिसके मुखसे एक बार भी कृष्णनाम उच्चरित हो, उसे वैष्णव जानकर उसका सम्मान करना।

श्रीकृष्णके नामसे ही सर्वसिद्धि हो जाती है, ऐसा जानकर नाम करनेवाले श्रद्धावान् व्यक्तिको वैष्णव कहा गया है। श्रद्धा ही वैष्णव होनेकी योग्यता प्रदान करती है। किन्तु प्रारम्भिक अवस्थामें श्रद्धा कोमल होनेसे व्यक्ति निरन्तर कृष्णनाम नहीं करता। ये कनिष्ठ वैष्णवके लक्षण हैं।

सत्यराज खाँनने अगले वर्ष रथ-यात्राके उपरान्त पूर्ववत् प्रभुसे अपने कर्त्तव्यके विषयमें जिज्ञासा की।

---

[१] यहाँपर श्रीनामको मुखसे उच्चारण करनेकी बात कही जा रही है, इसलिए मूक व्यक्तिके अतिरिक्त सभीके लिए इसे सुलभ कहा गया है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान्‌का नाम मूक व्यक्तिका उद्धार करनेमें समर्थ नहीं है। श्रीबृहद्भागवतामृत (१/१/९) में श्रील सनातन गोस्वामीपाद अपनी टीकामें वर्णन करते हैं कि पञ्च इन्द्रियोंमेंसे किसी भी इन्द्रिय द्वारा, जिस किसी भी तरहसे मात्र एकबार श्रीकृष्णनाम गृहीत होनेपर ही वे मुक्ति प्रदान करता है। जिसकी जिह्वा नहीं है वे चक्षु द्वारा नामाक्षरादि दर्शन अर्थात् कहींपर भी किसीके द्वारा लिखित श्रीनामाक्षर दर्शन, त्वचा द्वारा श्रीनामग्रहण अर्थात् वक्षःस्थल आदि पर श्रीनामाङ्कन अथवा पत्रादि पर लिखित श्रीनामस्पर्श अथवा हाथ द्वारा श्रीनामाङ्कित मुद्राधारण करके नाम ग्रहण करके अपना कल्याण कर सकते हैं।

प्रभु कहे,—"वैष्णव-सेवा, नाम-सङ्कीर्त्तन।
दुई कर, शीघ्र पाबे श्रीकृष्ण-चरण॥"

श्रीमन् महाप्रभुने कहा—"वैष्णवोंकी सेवा और नामसङ्कीर्त्तन रूपी दो कार्य करनेसे तुम्हें शीघ्र ही श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्ति होगी।"

तेंहो कहे—"के वैष्णव, कि ताँर लक्षण?"
तबे हासि' कहे प्रभु जानि' ताँर मन॥
(चै॰ च॰ म॰ १६/७०-७१)

सत्यराज खाँनने पूछा—"वैष्णव कौन है, उसके लक्षण क्या हैं?" तब श्रीमन् महाप्रभुने उसके भावोंको समझकर मुस्कराते हुए कहा।

"कृष्णनाम निरन्तर जाहार वदने।
सेई वैष्णव-श्रेष्ठ, भज ताहार चरणे॥"
(चै॰ च॰ म॰ १६/७२)

जो वैष्णव निरन्तर कृष्णनामका उच्चारण करता है, उसे कोमल श्रद्धावान कनिष्ठ वैष्णवसे श्रेष्ठ अर्थात् मध्यम वैष्णव जानना चाहिये। मध्यमाधिकारी वैष्णवके चरणोंकी सेवा गृहस्थ वैष्णवोंका कर्त्तव्य है।

निरन्तरका अर्थ है, जहाँ कृष्णनाम लेनेमें कोई अन्तराल अर्थात् व्यवधान नहीं होता। श्रीकृष्ण-सेवाके अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा, कर्म, ज्ञान और आलस्य ही 'अन्तर' अथवा 'व्यवधान' हैं। अथवा 'अन्तर' शब्दसे 'देह' (इन्द्रियतृप्ति), 'द्रविण' (अर्थ-संग्रहकी चेष्टा), 'जनता' (असत्सङ्ग या दुःसङ्ग), 'लोभ' (जिह्वालाम्पट्य या लालच) और 'पाषण्डता' (श्रीविष्णु-विग्रहमें शिला, काष्ठ, स्वर्ण, पीतल आदि धातुबुद्धि, श्रीगुरुदेवमें मर्त्यबुद्धि, वैष्णवमें जाति-भेद बुद्धि, श्रीविष्णु-वैष्णव चरणोदकमें जलबुद्धि, श्रीकृष्णनाम-मन्त्र और श्रीगुरुदेव द्वारा प्रदत्त नाममें 'जागतिक शब्द-सामान्य' बुद्धि और भगवान् श्रीकृष्ण और

त्रिगुणमयी मायासे बद्ध देवताओंमें समबुद्धि) को समझना चाहिये। इन्हें समस्त अपराधोंका मूल जानना चाहिये।

मध्यम भागवत निरन्तर कृष्णनाम करते हुए अपने हृदयमें श्रीकृष्णप्रेमका उदय कराते हैं और अपनेमें 'अप्राकृत कृष्णदासका' अभिमान रखते हैं। कभी-कभी वे कनिष्ठ भक्तोंको अपना सङ्ग प्रदानकर हरिकथाके द्वारा उनपर कृपा करते हैं। वे शुद्धभक्तोंसे मैत्री करते है और श्रीकृष्णसे प्रीतिरहित विद्वेषीजनोंके सङ्गका परित्याग कर देते हैं।"

तीसरे वर्ष रथ-यात्राके उपरान्त पुनः कु
द्वारा वही प्रश्न किये जानेपर श्रीमन् महाप्रभुने उत्तम भागवतके लक्षण बतलाते हुए कहा—

जाँहार दर्शने मुखे आईसे कृष्णनाम।
ताहारे जानिह तुमि 'वैष्णव प्रधान'॥

क्रम करि कहे प्रभु 'वैष्णव'-लक्षण।
'वैष्णव', 'वैष्णवतर', आर 'वैष्णवतम'॥

(चै॰ च॰ म॰ १६/७४-७५)

"जिनके दर्शनमात्रसे ही दर्शनकारीके मुखसे स्वतः ही कृष्णनाम निकलना आरम्भ हो जाता है, ऐसे वैष्णवको 'वैष्णव प्रधान' अर्थात् उत्तम वैष्णव जानना चाहिये।"

इस प्रकार श्रीमन् महाप्रभुने तीन वर्षोंमें क्रमसे 'वैष्णव', 'वैष्णवतर', और 'वैष्णवतम'—वैष्णवोंके तीन स्तर बतलाये।"

इन तीनों प्रकारके वैष्णवोंकी सेवा करना गृहस्थ वैष्णवोंका कर्त्तव्य है।

जिन वैष्णवोंके दर्शनसे ही लोगोंके मुखसे कृष्णनाम स्वतः ही निकलने लगता है, उन्हें महाभागवत जानना चाहिये। वे भगवत ज्ञान-विज्ञान-समन्वित होकर सर्वत्र श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं; उन्हें भगवान्से अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तुका दर्शन ही नहीं होता है और उन्हें यही प्रतीत होता

है कि सभी जीव श्रीकृष्णकी ही सेवा कर रहे हैं। उनके श्रीमुखसे सर्वदा शुद्ध कृष्णनामका कीर्त्तन होता रहता है। वे स्वयं दिव्य नेत्रोंसे युक्त होकर त्रिगुणमयी मायासे मोहित अज्ञानके अन्धकारमें भटकते जीवोंके नेत्रोंको दिव्य दृष्टि प्रदान करके उन्हें भी श्रीकृष्णकी सेवामें नियोजित करनेमें समर्थ हैं।

"ब्रह्माण्ड तारिते शक्ति धरे जने जने—एक-एक ऐसे महाभागतमें ब्रह्माण्डको तारनेकी शक्ति है" और "लोहाके यावत् स्पर्श हेम नाहि करे। तावत स्पर्शमणि केह चिनिते ना पारे।" "जब तक स्पर्शमणि लोहेको स्वर्णमें परिणत नहीं करती तब तक उसे पहचानना सहज नहीं" आदि वाक्य महाभागवतोंके सम्बन्धमें ही कहे गये हैं। समस्त प्राणियोंमें समदर्शी, निन्दाशून्य हृदयवाले ऐसे महाभागवतको सेवासे सन्तुष्ट करके, उनकी कृपाके प्रभावसे मध्यमाधिकारी वैष्णव उत्तम अधिकारी होनेका सौभाग्य लाभ करते हैं।

श्रीमन् महाप्रभुने प्रथम वर्ष श्रीकृष्ण-नामका माहात्म्य बताते हुए कहा कि नाम लेनेके लिए दीक्षाकी अपेक्षा नहीं है। उन्होंने ऐसा उपदेश स्वेच्छाचारी मायाबद्ध जीवोंमें कोमल श्रद्धा जाग्रत करनेके लिए ही दिया था। ऐसी श्रद्धाके जाग्रत होनेपर ही जीव गुरुके प्रति समर्पित होने योग्य होता है। इसलिए श्रीमन् महाप्रभुने प्रथम वर्ष तो कनिष्ठ वैष्णवका सम्मान करनेकी बात कही, किन्तु द्वितीय वर्ष श्रीमन् महाप्रभुने उन्हें मध्यम और उत्तम भागवतके चरणोंकी सेवाका अर्थात् उनके आनुगत्यमें भजन करनेका निर्देश दिया। सद्गुरुके चरणाश्रयके बिना भक्ति-राज्यमें उन्नति होना सम्भव नहीं है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने स्वयं भी श्रीपाद ईश्वर पुरीसे दीक्षा ग्रहण करके जगत्को यह शिक्षा दी।

आगम वाक्य है—"जिस प्रक्रियासे अप्राकृत दिव्यज्ञान उदित होता है और पापोंका समूल नाश होता है, पण्डितजन

उस प्रक्रियाको 'दीक्षा' कहते हैं। जिस प्रकार उपनयन संस्कार रहित मनुष्यका वेद अध्ययन आदिमें अधिकार नहीं होता है, उसी प्रकार अदीक्षित व्यक्तिका मन्त्रको जप करने आदिमें अधिकार नहीं होता है। इसलिए अपने परम कल्याणके लिए सभीको सद्गुरुसे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।"

निम्नलिखित प्रसङ्गके माध्यमसे श्रीमन् महाप्रभु यह समझा रहे हैं कि गुरु कौन होते हैं? नवद्वीपके समीप श्रीखण्डग्रामके वासी नरहरि सरकार, मुकु
श्रीमन् महाप्रभुके अन्तरङ्ग पार्षद थे। रथ-यात्राके उपरान्त श्रीमन् महाप्रभुने मुकु
उनसे पूछा—"मुकु
रघुनन्दन तुम्हारा पिता है? मुझे इस विषयमें कु
मुझे अपना निर्णय बतलाओ।"

मुकु
है और मैं उसका पुत्र हूँ। वास्तवमें पिता वही है, जो श्रीकृष्णभक्ति प्रदान करता है। हमारे सम्पूर्ण परिवारको श्रीकृष्णभक्ति रघुनन्दनके माध्यमसे ही प्राप्त हुई है, अतएव वह मेरा पुत्र नहीं है, मैं उसका पुत्र हूँ।" श्रीमन् महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"अब मेरा सन्देह दूर हो गया है। जो कृष्णभक्ति प्रदान करता है, वही वास्तविक गुरु होता है। तुम यथार्थमें एक उन्नत भक्त हो।"

साधककी प्रारम्भिक अवस्थामें उसे शास्त्रोंका भलीभाँति ज्ञान न होनेसे यह हो सकता है कि वह किसी ऐसे गुरुसे दीक्षा ग्रहण करे, जो कि यथार्थमें श्रीकृष्णप्रेम देनेके योग्य नहीं हैं। परन्तु बादमें यदि किसी शुद्धभक्तका सङ्ग प्राप्त होनेपर उसकी भक्तिमें प्रगति होने लगती है, तब उसके हृदयमें यह उत्कण्ठा उत्पन्न होती है कि वास्तविक गुरु कौन हैं?

जो व्यक्ति किसी सद्‌गुरुके पास पहुँचा देते हैं, वे वर्त्म-प्रदर्शकगुरु हैं। जो दीक्षागुरुके समान ही भक्तिमान और तत्त्वज्ञ हैं, वे शिक्षागुरु हैं। शिक्षागुरुका महत्व दीक्षागुरुके समान अथवा उनसे अधिक भी हो सकता है। यदि दीक्षागुरु सक्षम हैं और शिष्यको उनका सङ्ग भी प्राप्त होता है, तो वे शिष्यके दीक्षा और शिक्षा गुरु दोनों ही हैं। दीक्षागुरुके माध्यमसे चलनेवाली परम्पराको पाञ्चरात्रिक परम्परा कहते हैं और शिक्षागुरुके माध्यमसे चलनेवाली परम्परा भागवत परम्परा कहलाती है।

पाञ्चरात्रिक परम्परामें शिष्यका गुरुसे घनिष्ठ सम्बन्ध न होनेसे विचार-पद्धति और भावोंमें भिन्नता आ सकती है। इसलिए इस परम्परासे प्राप्त ज्ञान शुद्ध रूपमें प्रवाहित नहीं होता है। परन्तु भागवत परम्परामें शिष्यका गुरुसे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और शिष्यका भजन-साधन शिक्षागुरुके भावोंके अनुरूप ही होता है। इसलिए इस परम्पराके माध्यमसे भक्तिकी धारा शुद्ध रूपमें प्रवाहित होती रहती है।

इसलिए श्रील भक्तिविनोद ठाकु
बाबाजी महाराजको अपने दीक्षागुरु श्रीविपिन बिहारी गोस्वामीसे अधिक महत्व दिया। श्रीश्यामानन्द प्रभु, श्रीनरोत्तम दास ठाकु
अपने-अपने दीक्षागुरुसे अधिक महत्व दिया। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने भी अपने शिक्षागुरुओ—श्रील रूप गोस्वामी और श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीको अपने दीक्षागुरुसे अधिक सम्मान देते हुए श्रीचैतन्य चरितामृतके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें उनकी कृपाकी याचना की है—

श्रीरूप-रघुनाथ पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥

एकमात्र श्रीरूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामीके श्रीचरणकमलोंके आनुगत्यकी अभिलाषा करते हुए कृष्णदास द्वारा श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन किया जा रहा है।

यह भागवत परम्परा है और यदि दीक्षागुरु भी इसी भागवत परम्परामें हों, तो यह अति उत्तम है।

साधकको गुरु पदाश्रय करके श्रीकृष्णसे अपने सम्बन्ध ज्ञानसे युक्त होकर भजन करते हुए कृष्णप्रेमरूपी लक्ष्यको प्राप्त करना चाहिये।

वेदशास्त्रे कहे सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन।
कृष्ण, कृष्णभक्ति, प्रेम—तिन महाधन॥
(चै॰ च॰ म॰ २०/१४३)

वेद-शास्त्रोंमें श्रीकृष्णको 'सम्बन्धतत्त्व' तथा कृष्णभक्तिको 'अभिधेयतत्त्व' और कृष्णप्रेमको 'प्रयोजनतत्त्व' रूपी महाधन कहकर वर्णन किया गया है।

श्रीमदनमोहन सम्बन्धके, श्रीगोविन्ददेवजी अभिधेयके तथा श्रीगोपीनाथजी प्रयोजनके अधिष्ठातृ देवता हैं।

इस प्रयोजनको प्राप्त करनेका साधन श्रीचैतन्यचरितामृत (मध्यलीला ८/२२९) में वर्णित है—

"गोपी-आनुगत्य बिना ऐश्वर्यज्ञाने।
भजिलेह नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने॥"

व्रजगोपियोंके आनुगत्यके बिना जो ऐश्वर्यज्ञानसे श्रीकृष्णका भजन करते हैं, उन्हें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होती।

श्रीमती राधिकाका श्रीगोपीनाथके प्रति जो प्रेम है, उसे कोई भी गोपियोंका आनुगत्य किये बिना नहीं जान सकता।" परन्तु यह सभी गोपियोंके आनुगत्यसे भी सम्भव नहीं है। यशोदा मैया और उनकी सम-आयुकी गोपियोंके आनुगत्यमें

भी इस प्रेमको प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनका श्रीकृष्णसे प्रेम वात्सल्यभावमें है। चन्द्रावलीका प्रेम शृङ्गाररसमें महाभाव तक होनेसे भी उसमें कु
चरमसीमा 'मादनभाव' केवल श्रीमती राधिकामें ही है और उनके आनुगत्यमें ही इस प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है। श्रीमन् महाप्रभुकी विचार धाराके अनुसार हम प्रत्यक्ष रूपसे श्रीमती राधिकाके आनुगत्यमें सेवा नहीं कर सकते हैं और न ही हम उनकी प्रिय सखियों ललिता, विशाखा आदिका अनुकरण कर सकते है। हम केवल श्रीरूपमञ्जरी, श्रीरतिमञ्जरी और उनकी सखियोंका ही आनुगत्य ग्रहण कर सकते हैं।

हमें विशेष रूपसे श्रीरूपमञ्जरीका आनुगत्य करना चाहिये। वे सदा श्रीमती राधिकाकी सेवामें निमग्न रहती हैं। श्रीरूपमञ्जरीका श्रीमती राधिकाके भावोंमें पूर्ण रूपसे तदात्म्य हैं और श्रीमती राधिकाके समस्त भाव श्रीरूपमञ्जरीके भीतर प्रकट होते हैं। प्रेमकी इस सर्वोच्च स्थितिको जीव केवल मञ्जरियोंके आनुगत्यमें ही प्राप्त कर सकता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने स्वयं कहा है कि राधादास्यको प्राप्त करनेका इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है और न ही कभी होगा।

उपसंहार

श्रीमन् महाप्रभुका कृष्ण-विरहमें प्रलाप

रथयात्राके माध्यमसे भगवान् श्रीजगन्नाथदेव जगत्के समस्त जीवोंपर कृपा करते हैं। उन्होंने ही कलियुगमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें अवतरित होकर इस रथ-यात्राके गूढ़ तात्पर्यको प्रकट किया है। वस्तुतः परम औदार्यविग्रह श्रीमन् महाप्रभुकी अहैतुकी कृपासे ही विश्व यह जान सका है कि भगवत्ताका सार माधुर्यमें ही प्रतिष्ठित है। प्राचीन कालके समस्त वैष्णवाचार्योंके मतानुसार ऐश्वर्य ही भगवत्ताका सार है। परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके कृपापात्र गोस्वामियोंने सर्वशास्त्रशिरोमणि अमल प्रमाणस्वरूप श्रीमद्भागवतीय श्लोकोंके आधारपर स्वयं-भगवत्ताका आधार माधुर्यको ही निरूपित किया है। यद्यपि सभी भगवत्-स्वरूप तत्त्वतः अभिन्न हैं, तथापि नराकृति परब्रह्म व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही माधुर्यके साक्षात् मूर्त्तिमान विग्रह हैं और वे ही सभी रसोंके विषयस्वरूप रसिकशेखर भी हैं। लीलामाधुरी, प्रेममाधुरी, वेणुमाधुरी और रूपमाधुरी—ये चार माधुरियाँ केवल व्रजविहारी श्रीकृष्णमें ही परिपूर्ण रूपमें परिलक्षित होती हैं, अन्य किसी भगवत्-स्वरूपमें नहीं।

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

(श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकु

"भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं वैसा ही वैभवयुक्त श्रीधाम वृन्दावन भी आराध्य वस्तु हैं। व्रजवधुओंने जिस भावसे श्रीकृष्णकी उपासना की थी, वह उपासना ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही निर्मल शब्द प्रमाण एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है। यही सिद्धान्त हम लोगोंके लिए परम आदरणीय है, अन्य मत आदर योग्य नहीं है।"

श्रीकृष्णकी सर्वोत्तम माधुरी महाभावस्वरूपा गोपियोंके साथ ही प्रकाशित होती है। गोपियोंके समक्ष ही कोटि-कोटि कामदेवोंको मोहित करनेवाला उनका 'मन्मथ-मन्मथ' रूप प्रकट होता है। गोपियोंका उन्नत उज्जवल प्रेम ही उनकी इस माधुरीको प्रकाश करनेका हेतु है।

श्रीमन् महाप्रभुने दिखलाया है कि प्रेमकी पराकाष्ठा विप्रलम्भभावमें ही प्रकाशित होती है। गोपियोंके विप्रलम्भभावोंको देखकर ही उद्धवजी उनके उन्नत प्रेमके सामने नतमस्तक हो गये थे। श्रीमन् महाप्रभुने राधाजीके भावोंमें निमग्न होकर अपनी प्रकट लीलाके अन्तिम बारह वर्षोंमें गम्भीरामें श्रीराधाके विप्रलम्भभावका ही आस्वादन किया। वे दिन-रात श्रीकृष्णके विरहमें तड़फते रहते और पुकारते—

काँहा मोर प्राणनाथ मुरलीवदन।
काँहा करो, काँहा पाँऊ व्रजेन्द्रनन्दन॥
काहारे कहिब, केबा जाने मोर दुःख।
व्रजेन्द्रनन्दन बिना फाटे मोर बूक॥

(चै॰ च॰ म॰ २/१५-१६)

"हाय-हाय! मेरे प्राणनाथ, मेरे मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर कहाँ हैं? मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ, कहाँ मेरे व्रजेन्द्रनन्दन मिलेंगे? मैं अपना दुःख किससे कहूँ, कौन मेरा दुःख समझेगा? व्रजेन्द्रनन्दनके विरहमें मेरा हृदय फटा जा रहा है।"

हा–हा सखी, कि करि उपाय!
क्या करो, काँहा जाऊँ, काँहा गेले कृष्ण पाऊँ,
कृष्ण बिना प्राण मोर जाय॥
(चै॰ च॰ अ॰ १७/५३)

"हाय सखी! क्या उपाय करूँ? क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ जानेसे कृष्ण मिलेंगे? कृष्णके बिना मैं प्राण नहीं धारण कर सकती।"

श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्द जो कि कृष्णलीलामें क्रमशः ललिता और विशाखा सखी हैं, श्रीमन् महाप्रभुको उनके विप्रलम्भभावोंके अनुरूप श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्ण-कर्णामृतके श्लोक, गीतगोविन्द और विद्यापति, चण्डीदास आदि रसिक कवियोंके पद गाकर सान्त्वना प्रदान करते। विरहोन्माद दशामें श्रीमन् महाप्रभुके शरीरमें अष्टसात्विक विकार प्रज्ज्वलित रूपमें प्रकट होते थे। कभी वे बीस हाथ लम्बे हो जाते और कभी उनकी अस्थियोंके जोड़ खुल जाते और कभी वे कूर्माकार हो जाते। कभी तीव्र विरहमें वे दीवारोंसे टकराते और कभी भूमिपर लोट-पोट करते, इस प्रकार उनके शरीरसे रक्त रिसने लगता।

प्रेमके दो पक्ष हैं—मिलन और वियोग अर्थात् विप्रलम्भ। महाभावस्वरूपा गोपियोंमें प्रेम-वैचित्र्यका प्रकाश होता है। प्रियतमसे मिलन होनेपर भी विच्छेदके भयके कारण जो पीड़ा अनुभूत होती है, उसे प्रेम-वैचित्र्य कहते हैं। जैसा कि पूर्वके अध्यायमें वर्णन किया गया है कि श्रीमति राधाजी श्रीकृष्णके साथ होनेपर भी उनसे भावी विरहके भयसे मूर्च्छित हो गयीं। उनके प्रेममें ऐसी चमत्कारिता है कि जो मिलनमें विरहका और विरहमें मिलनका अनुभव करा देती है। श्रीराधाजी श्रीकृष्णके अदर्शनसे अधीर होकर कभी तमाल वृक्षको श्रीकृष्ण समझकर उसका आलिङ्गन करके

मिलनके आनन्दसिन्धुमें डूबने लगती थी। श्रीराधाजीके ऐसे भावोंको देखकर ही श्रीकृष्णने मथुरा जानेका निश्चय किया था।

श्रील रूप गोस्वामी और श्रील जीव गोस्वामीने पुराणोंके आधारपर यह प्रमाणित किया है कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण कभी भी व्रजका त्याग नहीं करते हैं। केवल उनके प्रकाश वासुदेव कृष्ण ही मथुरा और द्वारकामें जाते हैं। इसी प्रकार राधाजी भी कभी व्रजको छोड़कर कहीं नहीं जातीं और व्रजमें सदा श्रीश्रीराधाकृष्णका मिलन होता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि तब फिर उद्धवजीने व्रजमें श्रीराधाजीकी विरहकी अवस्थाका कैसे दर्शन किया? और राधाजी कु
कैसे गयीं? जिस प्रकारसे श्रीकृष्ण अपने अनेक स्वरूपोंका प्रकाश करते हैं, उसी प्रकारसे ही श्रीराधाजी भी अपने अनेक स्वरूपोंका प्रकाश करती हैं। श्रीकृष्णका मूल स्वरूप व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण है और श्रीराधाजीका मूल स्वरूप वृषभानुनन्दिनी राधा है। वृषभानुनन्दिनी राधाजीके दो अन्य रूप हैं—संयोगिनी राधा और वियोगिनी राधा। उद्धवजीने नन्दगाँवके निकट जाकर कदम्ब क्यारीमें वियोगिनी राधाजीके दर्शन किये थे और संयोगिनी राधाजी ही कु
मिलीं और उन्हें अपने मनरूपी रथपर विराजमानकर वृन्दावन लेकर आयीं।

रथयात्राके समय भी श्रीजगन्नाथदेवके आगे नृत्य करते हुए श्रीमन् महाप्रभु वियोगिनी और संयोगिनी राधाजीके इन भावोंमें विभावित होकर गोविन्द दास और चण्डीदासके इन पदोंका आस्वादन करते थे।

तुहुँ से रहिला मधुपुर
व्रजकु
कानु कानु करि झुर (१)

हे कृष्ण! तुम तो अब बहुत दूर मथुरा चले गये हो। तुम्हारे वृन्दावनकी क्या दशा हो गयी है? सभी व्रजवासी तुम्हारे विरहमें आकु
तुम्हें पुकारते हैं, परन्तु केवल प्रतिध्वनि ही सुनायी देती है। पक्षी भी तुम्हें पुकारते हैं, परन्तु कोई उत्तर नहीं आता। विरहमें सभी तड़फते हुए रो रहे हैं।

यशोमति-नन्द, अन्ध सम बैठाहि,
साहसे उठाइ ना पार
सखा-गण धेनु, वेणु-रव ना शुनिये,
विछुरल नगर बाजार (२)

हे यशोदानन्दन! यशोदा मैया और नन्दबाबा रोते-रोते अन्धप्रायः हो गये हैं और उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया है। वे कहीं आ-जा नहीं सकते, केवल एक स्थानपर ही बैठकर रोते रहते हैं। सखा लोग और गौवें भी वंशीध्वनि न सुनकर रोते रहते हैं। नगर-बाजारमें अब कोई नहीं जाता, सब स्थान सुनसान हो गये हैं।

कु
तरु-गण मलिन समान
मयूरी ना नाचत, कपोती ना बोलत,
कोकिला ना करतहि गान (३)

हे कानु! जब तुम व्रजमें थे, उस समय भ्रमर पुष्पोंके रसका पान करते थे, परन्तु अब वे ऐसा नहीं करते। वे तुम्हारे विरहमें रोते हुए भूमिपर लोटते हैं। वृक्ष-लता मलिन होकर सूख रहे हैं। अब मयूर नृत्य नहीं करते, पपीहे गान नहीं करते और कोकिल भी अब 'कु
सभी विरहमें छटपट कर रहे हैं।

विरहिणी राई, विरह-ज्वरे जर जर,
चौदिके विरह हुताश

सहजे यमुना जल, आगि समान भेल,
कहतहि गोविन्द दास (४)

विरहाग्निमें राधारानी दिन-रात जल रही हैं। व्रजमें चारों ओरमें विरहमें हाहाकारकी ध्वनि ही सुनायी पड़ रही है। यमुनाका जल अब स्थिर हो गया है और अपनी शीतलता त्यागकर अग्निके समान तप्त हो गया है। कवि गोविन्द दास कह रहे हैं—"हे कानु! सारा व्रज तुम्हारे विरहके महासागरमें डूब रहा है, अतः तुम मथुरामें क्यों वास कर रहे हो?"

सुखेर लागिया, ए घर बाँधिनु,
अनले पुड़िया गेल।
अमिया-सागरे, सिनान करिते,
सकलि गरल भेल॥ (१)

सुखकी आशासे मैंने यह घर बनाया था, परन्तु यह तो आगमें जल गया। हृदयको शान्त करनेकी आशासे मैं अमृतसागरमें स्नान करने गयी, परन्तु वह तो विषका सागर बन गया।

सखी! कि मोर कपाले लेखि।
शीतल बलिया, चाँद सेविनु,
भानुर किरण पेखि॥ (२)

हे सखी! मेरे भाग्यमें क्या लिखा है? शीतल मानकर मैं चाँदनीकी ओर गयी, परन्तु वह तो सूर्यकी तप्त किरण निकली और उसने मुझे जला दिया।

ऊचल बलिया, अचले चड़िनु,
पड़िनु अगाध-जले।

लछमी चाहिते, दारिद्र बेढ़ल,
माणिक हारानु हेले॥ (३)

ऊँचा जानकर मैं पर्वतपर चढ़ी, परन्तु जलके अगाध सागरमें जा गिरी। धनकी कामना की, तो दारिद्र्य और बढ़ गया। कहींसे मेरे हाथ एक मणि लगी, परन्तु वह भी कहीं खो गयी।

नगर बसालाम, सागर बाँधिलाम,
माणिक पाबार आशे।
सागर शुकाल, माणिक लुकाल,
अभागी–करम–दोषे॥ (४)

रत्नोंकी आशामें सागर तटपर मैंने घर बनाया, सागरमें बाँध बनाया। सागरके सारे जलको बाँधके दूसरी ओर उलीचा, परन्तु कोई रत्न हाथ नहीं आया। यह मुझ अभागीका कर्म–दोष ही है कि वह कहीं छुपा रहा।

पियास लागिया, जलद सेविनु,
बजर पड़िया गेल।
कहे चण्डीदास, कानुर पीरिति,
मरमे रहिल शेल॥ (५)

प्यास बुझानेके लिए मैंने मेघका जल पान करनेका प्रयास किया, किन्तु मेरे ऊपर वज्रपात हो गया। कवि चण्डीदास कहते हैं कानुसे प्रीति करके मेरे हृदयमें शूल ही चुभा—"मैंने कानुसे सुखकी आशामें प्रेम किया, अपना सर्वस्व उन्हें दे दिया, परन्तु वे मुझे छोड़कर चले गये। हाय! मैं क्या करूँ?"

इस प्रकार श्रीमन् महाप्रभुने जगत्के समक्ष श्रीमती राधारानीके प्रेमकी सर्वोत्कर्षता प्रकट की और दिखलाया कि श्रीराधाजीका प्रेम ही श्रीकृष्णको सम्पूर्ण रूपसे वशीभूत

करनेमें समर्थ है। श्रीराधाके अतिरिक्त अन्य किसीमें भी ऐसा प्रेम सम्भव नहीं है। इसलिए जीवोंके लिए राधादास्य ही परम प्रयोजन है। इसी विचार–धाराको प्रकट करना ही श्रीमन् महाप्रभुकी जीवोंके प्रति परम उदारता है। इन सभी तत्त्वोंका श्रीमन् महाप्रभुने रथयात्राके उत्सवमें प्रकाश किया है। इन तत्त्व–विचारोंको दृढ़तापूर्वक धारणकर अपने जीवनमें उनका पालनकर हमें अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

उपसंहार समाप्त।